☸ ओ३म् ☸

दिक-पीयूष-धारा

☸
☸ ☸
☸ ☸ ☸

देवेन्द्र कुमार कपूर

ओ३म्   84/4

ऋतपा ऋतेजा
सूनृता ईरयन्ती
व्याकरणाचार्या
गुरु, बहिन
प्रिय प्रज्ञा जी को

सप्रेम सस्नेह
देवेन्द्र कुमार
कपूर
२६-३-८०
बंबई

भा॰ पु॰
पा॰ क॰ वि॰ वा॰

ओ३म्

वैदिक-पीयूष-धारा

प्रवाहकः—

देवेन्द्र कुमार कपूर

प्रकाशक:—

देव वैदिक प्रकाशन

१२३, निभाना पाली ।

बान्द्रा, बम्बई—४०००५०

प्राप्ति-स्थान:—

रामलाल कपूर ट्रस्ट,

बहालगढ़ (सोनीपत-हरयाणा)

प्रस्तुत 'वैदिक-पीयूष-धारा के लेखक श्री बा० देवेन्द्र कुमार जी कपूर ने इसे छपवा कर श्री रामलाल कपूर ट्रस्ट (बहालगढ़) को दान के रूप में दे दिया है। इस सात्त्विक दान के लिये मैं श्री बा० देवेन्द्र कुमार जी कपूर का 'रामलाल कपूर ट्रस्ट' की ओर से हार्दिक धन्यवाद करता हूं।

युधिष्ठिर मीमांसक

प्रधान—रामलाल कपूर ट्रस्ट

प्रथम संस्करण—१०००

संवत् २०३६, सन् १९७९

मूल्य—१०-००, विशेष संस्करण १५-००

मुद्रक:—

सुरेन्द्र कुमार कपूर

रामलाल कपूर ट्रस्ट प्रेस,

बहालगढ़ (सोनीपत)

प्राक्कथन

वेद के स्वाध्याय-शील पाठकों के कर-कमलों में भ्राता श्री देवेन्द्र कुमार जी कपूर के **वैदिक-पीयूष-धारा** ग्रन्थ को उपस्थित करते हुए प्रसन्नता अनुभव कर रहा हूं। इस पुस्तक की प्रत्येक धारा भाव-प्रवण शब्दों एवं भावों से परिपूर्ण है। प्रत्येक मन्त्र की व्याख्या के अन्त में काव्यमय धारा में मन अवगाहन करके निस्सन्देह अलौकिक आनन्द का अनुभव करता है।

वेद के प्रत्येक मन्त्र से ऐसी ही पीयूषमयी—अमृतमयी धारा निस्यन्द होती है, जिस में अवगाहन करके मानव दुःख-दारिद्रय अविद्या-अन्धकार आलस्य और प्रमाद आदि दोषों का शोधन कर सुख-समृद्धि ज्ञान-विज्ञान और उत्साह आदि से परिपूर्ण होकर धर्म अर्थ काम और मोक्ष रूपी जीवन के पुरुषार्थ-चतुष्टय को प्राप्त करने में समर्थ होता है। परन्तु इस अमृत-रस का पान करने के लिये ईश्वर-विश्वास, श्रद्धा और भावना से परिपूर्ण मन की आवश्यकता है। श्रद्धा और शुद्ध भावना से परिपूर्ण मानव वेद के किसी भी मन्त्र में निहित उदात्त विचारों को अपना कर अपने जीवन को भद्र एवं कल्याणमय बना सकता है। इसी दृष्टि से भगवान् श्री कृष्ण ने कहा है—

> **यावानर्थ उदपाने सर्वतः संप्लुतोदके।**
> **तावान् सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ॥ गीता २।४६॥**

अर्थात् प्यासे प्राणी को लबालब जल से परिपूर्ण नदी वा तालाब आदि से प्यास को बुझाने के लिये जितने जल की आवश्यकता होती है, उतनी ही आत्म-जिज्ञासु को ज्ञान-विज्ञान से परिपूर्ण चारों वेदों के मन्त्रसमूह से अपेक्षित होती है।

इसीलिये कठोपनिषद् में कहा है—

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि च सर्वाणि यद् वदन्ति ।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ।।

अर्थात् वेद के प्रत्येक मन्त्र में परम महिमामय आनन्दकन्द सच्चिदानन्द को महिमा का ही वर्णन है। वह चाहे निर्गुण ब्रह्म के रूप में हो, चाहे सगुण ब्रह्म अर्थात् अनन्त महिमा से परिपूर्ण प्रत्यक्ष दृश्यमान जगत् के रूप में वर्णित हो। भक्ति-भावना-प्रवण मनुष्य को इस जगत् के प्रत्येक पदार्थ में, प्रत्येक अवयव में, कण-कण में उस सर्वशक्तिमान् महामहिमायुक्त प्रभु के ही दर्शन होते हैं।

ऐसे ही वर्त्तमान युग के महामानव आनन्दकन्द दयानन्द को वेद के प्रत्येक मन्त्र के अर्थ में चाहे वह पारमार्थिक (=आध्यामिक) हो, चाहे व्यावहारिक, सर्वत्र उस महामहिमामय प्रभु का ही दर्शन होता है। अतः एव उन्होंने अपने वेदभाष्य के विषय में ऋग्वेदादि-भाष्यभूमिका के प्रतिज्ञाविषय में लिखा है—

"नैवेश्वरस्यैकस्मिन्नपि मन्त्रेऽत्यन्तं त्यागो भवति। कुतः ? निमित्त-कारणस्येश्वरस्यास्मिन् कार्ये जगति सर्वाङ्गव्याप्तिमत्त्वात्, कार्येण सहेश्वर-स्यान्वयाच्च।"

अर्थात्—[व्यावहारिक अर्थ में भी] परमेश्वर का अत्यन्त त्याग किसी भी मन्त्र में नही हो सकता है। क्योंकि सम्पूर्ण जगत् का निमित्त कारण जगदीश्वर प्रत्येक कार्य जगत् में व्याप्त है, और प्रत्येक कार्य के साथ वह अन्वित है।

इस का भाव यह है कि सम्पूर्ण दृश्य-अदृश्य जगत् को रचने-हारा वह महान् शिल्पी स्वनिर्मित जगत् में व्याप्त होकर स्वयं तन्मय भासित हो रहा है। और प्रत्येक जड़-चेतन जगत् को स्वमहिमा से अनुप्राणित कर रहा है।

इसी तात्पर्य को भाषा के एक कवि ने इस प्रकार व्यक्त किया है।

तेरी महिमा के विना हे प्रभु मङ्गलमूल।
पत्ता तक हिलता नहीं खिले न कोई फूल।।

अत एव उस महान् आत्मा के विज्ञाता को संसार के प्रत्येक पदार्थ में उस की महिमा का दर्शन होता है। और अपने प्रिय के दर्शन की मस्ती में झूमता हुआ कहता है—'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' यह है सारा तेरा पसारा।

वैदिक-पीयूष-धारा के लेखक ने भी इसी भावना को ध्यान में रखकर वैदिक मन्त्रों के अक्षरों में निबद्ध अवबद्ध अवरुद्ध पारमार्थिक और व्यावहारिक विविध पीयूष-धाराओं को प्रस्यन्दित प्रस्रवित अवसर्जित वा उद्घाटित किया है।

अपने प्रिय भ्राता देवेन्द्र कुमार जी से मैं आशा करता हूं कि वे अपने जीवन में इसी प्रकार वैदिक-पीयूष-धाराओं को निरन्तर प्रवाहित करते रहेंगे। शनैः शनैः ये छोटी-छोटी अमृतमय धारायें कालान्तर में मिलकर एक ऐसी महाधारा का रूप धारण कर लेंगी, जिस में धर्म अर्थ काम और मोक्ष का इच्छुक मानव अवगाहन कर डुबकी लगा कर अपने-अपने लक्ष्य वा भावना के अनुरूप प्रत्येक पुरुषार्थरूप रत्न को प्राप्त कर अपने मानव-जीवन को सफल बनाने में समर्थ होगा।

वेद के उपदेष्टा परम कारुणिक प्रभु का भी वेद के स्वाध्याय करनेहारे मानवमात्र के लिये यही आशीर्वाद है कि प्रत्येक व्यक्ति वेद के द्वारा संसार में अपनी-अपनी कामनाओं को पूर्ण करें—

सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः। यजुः १२।४४॥

अर्थात् यज्ञमय जीवन को धारण करनेहारे प्रत्येक यजमान की सभी लौकिक वा पारमार्थिक कामनाएं सत्य होवें, पूर्ण होवें।

वेद का उपदेश ही प्रभु ने इसीलिये किया है कि—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्॥

सभी मानव सुखी होवें। सभी मानव आधिदैविक आधिभौतिक और आध्यात्मिक त्रिविध ताप=ज्वर से रहित निरामय होवें। सभी मानव कल्याण का ही दर्शन करें। कोई भी प्राणी दुःखी न होवे।

प्रत्येक मानव को अपनी सभी कामनाओं की पूर्ति के लिये परम कृपालु दयामय प्रभु से प्रतिदिन सायं प्रातः श्रद्धा एवं भक्ति-पुरःसर प्रार्थना करनी चाहिये—

असतो मा सद् गमय।
तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्माऽमृतं गमय।

असत्य से हे नाथ! हमें सत्य की ओर ले चलो।
अन्धकार से हे नाथ! हमें प्रकाश की ओर ले चलो।
मृत्यु से हे नाथ! हमें मोक्ष की ओर ले चलो।

रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़
जिला सोनीपत (हरयाणा)

विदुषां वशंवदः—
युधिष्ठिर मीमांसक

प्रस्तावना

तत्स॑वि॒तुर्वरे॑ण्यं॒ भर्गो॑ दे॒वस्य॑ धीमहि ।

पावन गायत्री महामन्त्र के इन दैवी पदों द्वारा हम प्रभू से प्रार्थना करते हैं कि हे सवितः देव ! आप के उस वरने योग्य भर्ग का हम ध्यान करें, और उसे जीवन में धारण करें।

मानवमात्र के कल्याण के लिये इस पवित्र ऋचा में बड़ा भारी रहस्य छिपा है। भगवान् के भर्ग को जिस ने जान लिया, और जीवन में चरितार्थ कर लिया, उस का जीवन मानो सफल हो गया, और वह उत्कर्ष की चरम सीमा पर पहुंच गया। परन्तु यह 'भर्ग' है क्या ?

गोपथब्राह्मण के ऋषि ने इस रहस्य का बड़ा महत्त्वपूर्ण तथा सुन्दर उद्घाटन किया है। वे लिखते हैं—"वेदाश्छन्दांसि सवितुर्वरेण्यम्"। अर्थात् वेद और छन्द ही सविता भगवान् का वरेण्य भर्ग हैं। तो भगवान् के उस वरने योग्य स्वरूप को जानने के लिये हमें वेदों की शरण लेनी होगी। वैदिक ऋचायें ही वह अद्भुत महा विश्व-कोष है, जिस में सब ज्ञान-विज्ञान तथा उस महान् परमात्मा का दिव्य भर्ग गाया गया है।

आ नः पवस्व॒ धार॑या॒ पव॑मान र॒यिं पृ॒थुम् ।
यया॒ ज्योति॑र्वि॒दासि॑ नः ॥ ऋग् ९।३५।१॥

इस ऋचा में कहा गया है कि—'उस पवित्र करनेवाले भगवान् के भर्ग को जब आत्मा धारण कर लेती है, तो वह पवमान उसे अपनी पावन पीयूष-धाराओं से पवित्र करके अपने ज्ञान के प्रकाश से उसे ज्योतिष्मान् कर देता है, और सांसारिक ऐश्वर्य तथा आध्यात्मिक आनन्द से उसे भरपूर कर देता है।

"केतपूः केतं नः पुनातु", 'हे ज्ञान को पवित्र करनेवाले प्रभु ! हमारे ज्ञान को पवित्र कर।' ऐसी पावन वैदिक लोरियों को गुन-गुनाता हुआ, उस पवित्र ज्ञान से कर्त्तव्य-मार्ग पर चलता हुआ, जीव जीवन में आमोद-प्रमोद का वातावरण भरता हुआ जीवन-रथ को आनन्द के राजपथ पर ले जाता है।

सविता देव के वे कौनसे राजपथ हैं, जिन पर हमारे पूर्वज ऋषि-मुनि विचरे ? इसी की जिज्ञासा लेकर प्रथम मन्त्र में ही इस "वैदिक-पीयूष-धारा" में भक्त प्रभु से प्रार्थना करता है कि—'हे सवितः देव ! अविद्यारूपी धूलि-कणों से रहित उन पवित्र मार्गों को मुझे भी दर्शाओ, और उन पर चलते हुए मेरी रक्षा करो।'

इन्हीं पवित्र पथों का दिग्दर्शन, तथा पावन धाराओं का शीतल स्पर्श, इन चुने हुए वेद-मन्त्रों का मधु-संचय, "वैदिक पीयूष धारा" में आप को मिलेगा।

वेदार्थ-प्रक्रिया में महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती की सब से बड़ी अनुपम देन यह है कि उन्होंने इन दैवी वैदिक ऋचाओं का मानव-जीवनापयोगी व्यावहारिक अर्थं भी दर्शाया। उसी को आधार बना कर इस छोटे से संकलन में 'मानव अपने व्यावहारिक जीवन में इस धरती पर कैसे विचरे' इस की कुछ सुन्दर झांकियां प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। यथा—

जीवन-रथ को सब से आगे रखना, और जीवन-उत्कर्ष की चरम सीमा के उद्गार; वेद के अहर्निश स्वाध्याय द्वारा ज्ञान की पिपासा ऐसे शान्त होती है, जैसे पिपासातुर कुंआ खोद कर जल पीता है। प्रातःकाल उठकर धर्मार्थ काम मोक्ष का चिन्तन, तथा ध्यानावस्था में बैठ कर सूर्य-समान प्रभु की प्रखर ज्योति के दर्शन पाकर आनन्द विभोर होना; उषा की उपमा द्वारा सुन्दर वैदिक आदर्श देवियों का चित्रण; युवा पत्नियों का अपनी सौन्दर्य-प्रतिभा से निज तेजस्वी पतियों को रिझाना, तथा पतियों का मेघों के समान समग्र सुख-ऐश्वर्य पत्नियों पर बरसाना; दाम्पत्य-जीवन स्वर्ग कैसे बनता है ?

"समझ लो तब पंख अपने सब समेट,
स्वर्ग ही आकाश से उतरा वहां।"

माता-पिता का निज संतति की ओर कर्त्तव्य; संसार में सुख-शान्ति कैसे मिले; धन-ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये हिरण्य-पाणि प्रभु का आह्वान; कभी भी सुमति नष्ट न करने की प्रार्थना; पवन का प्रत्येक झोंका मधु कब बरसाता है? उत्तम सुख-प्रद स्वराज्य कैसा हो? जैसे माता शिशु को दूध पिलाती है, ऐसे ही भगवान् भक्त को अमृत-रस कैसे पिलाते हैं? विद्वान् लोग नित्य नये प्रवचनों द्वारा सत्योपदेश करें; दान-दक्षिणा से अमृत-सुख कैसे मिलता है? मन जैसी शीघ्र गतिवाले विमानों का निर्माण धर्म-स्थापना के हेतु, इत्यादि भिन्न-भिन्न विषयों की झलक आप को मिलेगी। प्रत्येक मन्त्र अपनी ही विशिष्ट सुगन्धि से सुवासित है। जिस भी पृष्ठ को खोलेंगे अपनी ही विशिष्ट महक पायेंगे।

इस 'वैदिक-पीयूष-धारा' के प्रकाशन में सब से पूर्व उस दयालु सविता देव की प्रेरणा है, जिसने इस श्रेष्ठ आर्य परिवार में मुझे जन्म दिया। प्रातःस्मरणीया पूज्या माता जी से मैंने एक बार विनोद में पूछा—"माता जी! आपने क्या खाकर मुझे जन्म दिया, जो वैदिकमन्त्रों, गीता-उपनिषद् के स्वाध्याय के लिये मैं इतना लालायित रहता हूं कि कभी प्यास ही नहीं मिटती।" मुस्करा कर वे मधुर स्वर में बोलीं कि—"जब तू मेरे गर्भ में पल रहा था, तो अमृतसर में विख्यात संन्यासिनी, माई गङ्गादेवी जी मुझे महर्षि स्वामी दयानन्द के अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश तथा ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका पढ़ाया करती थी। वही पवित्र संस्कार तूने जन्म घुट्टी में ले लिये।" मैं सुनकर गद्-गद् हो गया! 'मातृमान् पुरुषो वेद' को सार्थक बनाने वाली मां! तू धन्य है!! तुझे शत-शत प्रणाम करता हुआ आज तेरे ही पावन चरणों में यह हिन्दी में लिखित प्रथम पुष्प 'वैदिक-पीयूष-धारा' सस्नेह समर्पित करता हूं।

पूज्यवर पिता जी, स्वनाम धन्य श्री बा० रूपलाल जी कपूर भी इस होड़ में पीछे नहीं रहे। तनिक होश संभाली, तो पौष-माघ की ठिठुरती सर्दी में भी प्रातःकाल उठाकर अपने साथ भ्रमण के लिये ले जाते। घर से निकलते ही वेदमन्त्र की व्याख्या सुनाना आरम्भ कर देते, और घर पहुंचने तक यह क्रम चलता रहता। घर

पहुंचने से पूर्व गर्म-गर्म बादाम सौंगीयुक्त गुड़ का हलवा अवश्य खिला देते थे। अग्निहोत्र के पश्चात् भी वेदामृत-सुधा बरसाते रहते। उंगली पकड़ कर अपने साथ आर्यसमाज मन्दिर ले जाते, घर में साधु सन्तों-विद्वानों का तांता लगा रहता।

२२ वर्ष की आयु में मैं पारिवारिक व्यापार संभालने करांची चला गया। वहां भी पत्रों द्वारा अपना स्वाध्याय करते-करते, जो मन्त्र अच्छे लगते वह मुझे लिख भेजते। योग-सम्बन्धी आन्तरिक बातों की भी कभी-कभी चर्चा करते रहते। उन की यह हार्दिक इच्छा थी कि मैं अंग्रेजीभाषा में वैदिक वाङ्मय का अनुवाद करूं। इसी पवित्र आदेश की पूर्त्ति के लिये सब से प्रथम अवसर मिलते ही "Success Motivating Vedic Lores" 'सक्सैस मोटिवेटिंग वैदिक लोर्ज' अंग्रेजी में लिख कर पूज्यपाद पिता जी के पावन चरणों में समर्पित की।

आज यह हिन्दी का प्रथम पुष्प, **'वैदिक-पीयूष-धारा'** भी उन्हीं के पावन चरणों में समर्पित करता हूं। **"पितृमान् पुरुषो वेद"** के महावाक्य को पूज्यवर पिता जी ने सार्थक किया। बद्धाञ्जलि नतमस्तक मैं उन्हें प्रेमपूर्ण श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूं।

तपःपूत ब्रह्मनिष्ठ गुरुवर्य्य आचार्य ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु का भी मेरे सर पर बड़ा वरद-हस्त रहा। मेरी युवावस्था थी। मैं डी० ए० वी० कालेज लाहौर में बी० ए० में पढ़ता था। उन दिनों देश की स्वतंत्रता का आन्दोलन जोरों पर चल रहा था। मैं भी एक क्रान्तिकारी दल का सदस्य बन गया। गुरु जी महाराज को पता लगा। मुझे अपने पास बिठा कर समझाने लगे। अमृतसर में रामभवन की यह घटना है। मुझे समझाया कि देश-सेवा तो अवश्य करो, इसीलिये तो मनुष्य जन्म मिला है, परन्तु पहिले अपने आपको योग्य बना लो। शिक्षा-ग्रहण करने का भी यही अवसर है। मैं उनके अमृत-परामर्श तथा आज्ञा को कैसे टाल सकता था? अन्त में एक कागज के टुकड़े पर पैंसिल से लिखवा लिया कि "वैदिक साहित्य की सेवा करना जीवन का मुख्य उद्देश्य रहेगा"

यह एक पङ्क्ति मुझे मन्त्र की भान्ति सदा प्रेरणा देती रही।

"आचार्यवान् पुरुषो वेद" को गुरुवर ने साकार किया। आप की स्वच्छन्द विचरनेवाली सूक्ष्म शरीरधारी महान् आत्मा को मेरा शत-शत नत-मस्तक प्रणाम।

यह तो हुईं परोक्ष की बातें। प्रत्यक्षरूप में प्रोत्साहन देनेवाले अर्चिष्मान् आदरणीय भ्राता युधिष्ठिर मीमांसक जी ने मुझे 'वेदवाणी' में मन्त्रों की व्याख्या लिखने के लिये उत्साहित किया। मित्रों ने, पारिवारिक जनों ने इसे सराहा कि 'आप का प्रस्तुतीकरण बड़ा सुन्दर है'। लिखते-लिखते उत्साह बढ़ता गया। उसी का परिणाम यह 'वैदिक-पीयूष-धारा' आपके समक्ष है। इस का यह सुन्दर नाम भी श्रद्धेय युधिष्ठिर जी का ही सुझाव है। मेरी प्रार्थना करने पर श्री युधिष्ठिर जी ने वडी ही सुन्दर इस पीयूष-धारा की भूमिका लिखी। समयाभाव होने पर, अस्वस्थ होते हुए भी मेरी प्रार्थना को स्वीकार किया। इस के लिये धन्यवादपूर्वक, नत-मस्तक भगवान् से प्रार्थी हूं कि इस अनुपम वैदिक-विभूति, आधुनिक वैदिक वाङ्मय के ऋषि, कृशकाय अस्वस्थ श्री पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक को दीर्घ आयु तथा स्वास्थ्य प्रदान करें।

इन मंत्रों की व्याख्या में आप सरस गीतों का रसास्वादन भी करेंगे। इनकी सरसता तथा सच्छन्दता में गुरुकुल कांगड़ी के स्नातक श्री पण्डित सत्यपाल जी विद्यालंकार का कुशल कवि-हस्त है। मैंने इन्हें इस कृति की पाण्डुलिपि दिखलाई, तो उन्होंने बड़ी कृपा से इन सब गीतों को संवारा, और सुन्दर शब्दावली में सजाया। मैं उन का सादर आभारी हूं।

वेदवाणी के सह सम्पादक श्री पं० महेन्द्र शास्त्री जी ने बड़ी लग्न से इस का प्रूफ संशोधन तथा छपाई का कार्य देखा। उनका भी बहुत धन्यवाद करता हूं।

प्रातः स्मरणीय पूज्यवर पितामह जी, श्री रामलाल जी कपूर का भी मेरे प्रति बड़ा स्नेह था। अमृतसर में नवीं श्रेणि में पढ़ते जब मैंने पंजाब यूनिवर्सिटी की संस्कृत की प्राज्ञ परीक्षा भी उत्तीर्ण कर ली, तो उन को बड़ा हर्ष तथा गर्व हुआ। विशेष वात्सल्य-भरा लाड-प्यार देकर, मुझे पठन-पाठन में बड़ा उत्साहित किया करते थे।

उन्हीं के विशेष आशीर्वाद से यह प्रथम पुष्प, उन्हीं की की स्मृति में बनाये गये "श्री रामलाल कपूर ट्रस्ट" को सप्रेम भेंट करते हुए मुझे बड़ा हर्षोल्लास हो रहा है।

पीयूष-वर्षिणी निर्झरिणी इस "वैदिक-पीयूष-धारा" की पावन गंगा में स्नान कीजिये। इस पुनीत धारा में गोता लगा, कतिपय आत्मायें अपने मल-विक्षेप आवरण को यदि दूर कर सकें, तथा अपने प्रीतम को साक्षात् कर, अनुपम प्यार तथा आनन्द पाकर अपने जीवनों को सफल कर सकें, तो इसी में मैं अपने लघु प्रयास की सफलता समझूंगा।

स्युष्टे सत्या इहाशिषः ।

प्रभु देव ! आपके आशीर्वाद मानवमात्र के लिये सत्य हों॥

१२३ निभाना, बम्बई
२४।१०।७९

देवेन्द्र कुमार कपूर

—:o:—

विषय-सूची

वर्ण्य विषय	पृष्ठ

—:o:—

* ओ३म् *

वैदिक-पीयूष-धारा

हे सविता देव ! हमें धर्म के सुगम मार्ग दर्शाओ

ऋषिः—आङ्गिरसो हिरण्यस्तूपः। देवता—सविता। छन्दः—विराट् त्रिष्टुप्। स्वरः—धैवतः॥

ये ते पन्थाः सवितः पूर्व्यासोऽरेणवः सुकृता अन्तरिक्षे।
तेभिर्नो अद्य पथिभिः सुगेभी रक्षा च नो अधि च ब्रूहि देव॥

ऋ० १।३५।११॥

पदार्थः—

सवितः—हे सकल जगत् को उत्पन्न करनेवाले, तथा
देव—सब सुखों को देनेवाले परमेश्वर !
ये ते—जो आप के
अन्तरिक्षे—ब्रह्माण्ड में व्याप्त,
अरेणवः—धूलिरूप-अविद्या के कणों से रहित, स्वच्छ
पन्थाः—धर्ममार्ग हैं, जो
पूर्व्यासः—हमारे से पूर्व ऋषि-मुनियों ने
सुकृता—अच्छी प्रकार सेवन करके साधे हैं,
तेभिः सुगेभिः—उन सुगमता से प्राप्त होनेवाले
पथिभिः—धर्ममार्गों का
नः अद्य—आज ही हमें
अधि ब्रूहि—भली प्रकार उपदेश करो,
नः च रक्ष—और उन मार्गों पर चलते हुये हमारी रक्षा करो॥

भावार्थः—जीवन का लम्बा मार्ग सुगमता से कैसे पार करें ? इसी के लिये भक्त प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि हे भगवन् ! कृपा

करके हमें वह सरल मार्ग बताओ, जो आपने अपने व्यापक ब्रह्माण्ड में बना रखा है।

मन्त्र के भीतर ही मार्ग का दर्शन भी छिपा है। सविता देव से प्रार्थना करते ही यह भाव आ जाता है कि हम जीवन में उस मार्ग को अपनावें, जो दिव्यता को उत्पन्न करनेवाला हो, तथा जिस पर चल कर हम संसार में अच्छाई का वातावरण पैदा कर सकें, और किसी प्रकार की अपवित्रता न बढ़ा पावें। ऐसे ही कल्याणकारी मार्गों पर हम से पूर्व ऋषि-मुनि विद्वान् नर-नारी चलते रहे हैं।

उन्हीं मार्गों के लिये वेदभक्त प्रार्थना करते हैं कि हे सविता देव प्रभो ! आज ही इसी क्षण हमें उन पवित्र मार्गों की झांकी दिखलाओ, तथा उन आप के दर्शाये हुए मार्गों पर चलते हुए जो भी विघ्न-बाधायें आयें, उनसे हमारी रक्षा करो ॥

गीत

जीवन के दुस्तर पथ को,
किस विधि प्रभु हम पार करें।
जिन मार्गों से ऋषि-मुनि विचरे,
उन पग-चापों का ध्यान धरें ॥

सृजनात्मक कर्मों को करते,
जीवन को हम सफल करें।
दिव्यगुणों का मधु पराग,
जीवन-कुसुमों में सदा भरें ॥

हे सविता ! कल्याण करो,
करो सुपथ का निर्देशन।
धर्ममार्ग पर सदा चलें औ,
रहे तुम्हारा संरक्षण ॥

—:o:—

हमारा जीवन रथ सब से आगे करो

ऋषिः—आङ्गिरसः कुत्सः । देवता—अग्निः । छन्दः—निचृत् त्रिष्टुप् । स्वरः—धैवतः ।।

पूर्वो देवा भवतु सुन्वतो रथोऽस्माकं शंसो अभ्यस्तु दूढ्यः ।
तदा जानीतोत पुष्यता वचोऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ।।

ऋ० १।९४।८।।

पदार्थः—

देवाः—हे विद्वानो, तथा दिव्यगुणों को देनेवाले प्रभो !
अस्माकं शंसः रथः—हमारा प्रशंसित जीवन-रथ
पूर्वः भवतु—सब से आगे हो, तथा
दूढ्यः अभ्यस्तु—गहन गम्भीर हो ।
सुन्वतः अग्ने—हे सुख की उत्पत्ति तथा वर्षा करनेवाले प्रभु, तथा आत्मदेव ! आप हमें
उत पुष्यता—उत्तम पुष्टि करनेवाले
तत् वचः आ जानीत—वह प्रेरक वचन बताओ ।
वयं तव सख्ये—हम आप के सखाभाव में
मा रिषाम—कभी दुःख को प्राप्त न हों ।।

भावार्थः—जीवन-रथ को सब से प्रथम रखने की इस मन्त्र में प्रबल प्रेरणा है ।

विद्वानों की संगति तथा दिव्य गुणों की प्राप्ति से ही मानव अपने जीवन-रथ को सब सुखों से भरपूर कर, सब से अग्रणी कर सकता है । अतः उन देवों को ही पुकारा गया है कि आप हमारे जीवन में उतरो, और हमारे रथ को सब से आगे करो ।

प्रभु-प्रेरणा से आत्मा मन को उत्तम शिक्षायुक्त वचनों से आज्ञा करता है कि तुम सदा ऐसी मंत्रणा करो, जिससे मेरे जीवन की सदा सर्वाङ्गीण पुष्टि हो ।

पुनः प्रार्थना तथा प्रेरणा के रूप में दर्शाया है कि उस दयालु जगदीश्वर का सखा कभी किसी प्रकार का दुःख प्राप्त नहीं करता ।

इसी प्रकार जो मानव अपनी आत्मा की आवाज सुन कर चलता है, वह जीवन में कभी धोखा नहीं खाता।

प्रभु देव ! आप हमारे सच्चे सखा बन कर हमें सब से उत्तम बनने की प्रेरणा करते रहो।।

गीत

दिव्य गुणों से भूषित हो,
अग्रणी हमारा जीवन-रथ ।
देवों ऋषियों की संगति में,
हो सहज सरल उन्नति का पथ ।।

वेदों की अमृत वाणी से,
ले सकें नित्य प्रेरणा नवीन ।
प्रज्वलित रहे उत्साह-अग्नि,
हारें न कभी, न रहें दीन ।।

तुम सोमरूप हो, प्रियतम हो,
सुख वैभव प्रतिपल बरसाओ ।
हो सखा हमारे अनुपम तुम,
इस जीवन को तुम सरसाओ ।।

—:०:—

सुख चाहनेवालो ! वैदिक लोरियों से अन्तस्तल भरलो

ऋषिः—राहूगणो गोतमः । देवता—अग्निः । छन्दः—निचृद् गायत्री । स्वरः—षड्जः ॥

प्र पूतास्तिग्मशोचिषे वाचो गोतमाग्नये ।

भरस्व सुम्नयुर्गिरः ॥ ऋ० १।७९।१०॥

पदार्थः—

गोतम—हे स्तुति के योग्य विद्वान्, तथा
सुम्नयुः—सुख-प्राप्ति की इच्छावाले जीव ! तुम
अग्नये—जीवन को आगे ले जानेवाले विज्ञान के लिये
पूताः वाचः—पवित्र करनेवाली ऋषियों की वाणियों को, तथा
तिग्मशोचिषे—बुद्धि के लिये तीक्ष्ण प्रकाश करनेवाली
गिरः—वेदवाणी को
प्रभरस्व—सब ओर से अपने अन्तःकरण में भर लो ॥

भावार्थः—सुख तथा विज्ञान की प्राप्ति कैसे हो ? इस का सुन्दर साधन इस ऋचा ने बताया है ।

हे स्तुति के योग्य विद्वान् ! तुम जीवन को आगे ले जाने-वाले विज्ञान, तथा तीक्ष्ण बुद्धि के लिये लालायित हो, तुम श्रेष्ठ सुख के इच्छुक हो, तो जाओ उन आप्त पुरुषों के समीप, जो आत्मविद्या तथा वेदविद्या में पारंगत हैं । उनसे अन्तःकरण को पवित्र करनेवाली पावक वाणियों को सुनो, और अपने भीतर उन्हें भरलो । बुद्धि को सूक्ष्म करनेवाली वैदिक लोरियों को सुनो, और अपने मस्तिष्क में उन्हें भर लो ।

"केतपूः केतन्नः पुनातु"—हे ज्ञान को पवित्र करनेवाले प्रभु ! हमारे ज्ञान को पवित्र कर, ऐसी पावन वैदिक लोरियों को गुनगुनाता हुआ, उस पवित्र ज्ञान से कर्त्तव्य-मार्ग पर चलता हुआ हे विद्वान् जीव ! तू जीवन-रथ को आगे ले जाता चल, और जीवन में आमोद-प्रमोद का वातावरण भरता चल ॥

गीत

ऋषियों की शुचि वाणी से,
करलो आप्यायित अन्तस्तल।
भाव-भरे वैदिक मन्त्रों का,
भरलो अपने में अनुपम बल ॥

जीवन-रथ में अग्रगामिता,
शुभ कर्मों से बनी रहे।
आप्तजनों के उपदेशों से,
मेधा सदैव सनी रहे ॥

ऋषि-मुनियों के वचन निरन्तर,
कानों में मधुरस घोलें।
वेदों की अमृता ऋचायें,
मानस के पट को खोलें ॥

—:०:—

प्रतिदिन वेदाध्ययन से ऊर्ध्वगति की प्राप्ति

ऋषिः--राहूगणपुत्रो गोतमः । देवता-मरुतः । छन्दः-विराट् त्रिष्टुप् । स्वरः-मध्यमः ॥

अहा॑नि॒ गृध्राः॒ पर्या व॒ आगु॑रि॒मां धियं॑ वार्का॒र्यां॑ च दे॒वीम् ।
ब्रह्म॑ कृ॒ण्वन्तो॒ गोत॑मासो अ॒र्कैरू॒र्ध्वं नु॑नुद्र उत्स॒धिं पिब॑ध्यै ॥
ऋ० १।८८।४॥

पदार्थः—

अहानि ब्रह्म कृण्वन्तः—दिनों-दिन वेद का स्वाध्याय करनेवाले,
वः गृध्राः गोतमासः--वेदज्ञान को प्राप्त करने के अत्यन्त इच्छुक वे ज्ञानवान् विद्वान् पुरुष,
इमां वार्कार्यां देवीं च धियम्--जल के समान स्वच्छ, श्रेष्ठ, धारणावती बुद्धि की देवी को
पर्या आगुः—चहूं ओर से प्राप्त कर लेते है । तथा
नुनुद्र--जीवन को उत्कृष्ट करने के हेतु,
अर्कैः ऊर्ध्वम्--वेदज्ञान की रश्मियों से ऊपर उठ जाते हैं । और ज्ञान की पिपासा ऐसे मिटा लेते हैं, जैसे
पिबध्यै उत्सधिम्--जल पीने के लिये पिपासातुर मनुष्य कूप खोद कर प्यास मिटा लेते हैं ॥

भावार्थः--जीवन उत्कृष्ट कैसे बनता है ? इस का सुन्दर वर्णन इस ऋचा में है ।

जिस प्रकार पिपासा से व्याकुल व्यक्ति पुरुषार्थ से भूमि को खोदकर कूप अथवा पम्प द्वारा निर्मल मधुर जल को पान कर, अपनी पिपासा मिटाकर तृप्त होता है, इसी प्रकार ज्ञान की तीव्र आकांक्षावाला विद्वान् मानव, दिन-प्रतिदिन वेद का स्वाध्याय करता है । उन पवित्र मन्त्रों के पाठ तथा गहरे अध्ययन से उसे समय पाकर वह धारणावती बुद्धि प्राप्त हो जाती है, जिस आर्या देवी के प्रकाश द्वारा वह जीवन में उत्तरोत्तर उत्कृष्टता को प्राप्त होने लगता है । धन अन्न आदि की समस्या को सुलझा कर वह हृदय की

गुफा में गहरा उतर कर ब्रह्म के परम शान्त आनन्दपद पद को प्राप्त कर लेता हैं। अत्यन्त ज्ञानवान् बनकर, मरुत् समान स्वयं क्रियाशील बनकर अन्यों को सन्मार्ग-दर्शन करानेवाला महान् नेता बन जाता है।

इसी हेतु महर्षि दयानन्द सरस्वती ने निर्देश किया कि वेदों का पढ़ना-पढ़ाना, सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। प्रभु देव! हम सब को प्रेरणा दो कि प्रतिदिन वेद का स्वाध्याय कर हम अपने जीवनों को सफल कर सकें।।

गीत

प्यासा जैसे भूमि खोद कर,
निर्मल जल को पीता है।
ज्ञानातुर वैसे ही प्रतिदिन,
वेद-ज्ञान को पाता है ।।

ऋक् यजु साम अथर्वन् की,
जब बह निकलेंगी सभी ऋचायें।
दिव्य धिया से आलोकित,
जीवन की होंगी तभी दिशाएं ।।

अतुल सपदा से पूरित जब,
ब्रह्म ज्ञान को पाता है।
मंत्र-मंत्र में भीतर की तब,
मनुज मधुरता लाता है ।।

—०—

सुखप्राप्ति के हेतु, सुभगा वाणी तथा दिव्यगुणों का आह्वान

ऋषिः—राहूगणपुत्रो गोतमः। देवताः—विश्वे देवाः। छन्दः—जगती। स्वरः—निषादः॥

तान् पूर्वया निविदा हूमहे वयं भगं मित्रमदितिं दक्षमस्रिधम्।
अर्यमणं वरुणं सोममश्विना सरस्वती नः सुभगा मयस्करत्॥

ऋ० १।८९।३॥

पदार्थः—

तान् पूर्वया निविदा—उन सब उत्कृष्ट प्रभु के गुणों को, जो वेद द्वारा आदि सृष्टि से प्रतिपादित हैं,
वयं हूमहे—हम अपनी आत्माओं में आह्वान करते हैं।
अदितिम्—जो अखण्डित प्रकाश,
मित्रम्—मैत्रीभाव, तथा
भगम्—ऐश्वर्य को प्रदान करनेवाले हैं, जो
अस्रिधम्—हिंसारहित,
अर्यमणम्—न्यायकारिता, तथा
दक्षम्—चतुरता को देनेवाले हैं, जो
सोमं वरुणम्—शान्त स्वभाव तथा श्रेष्ठता प्रदान करनेवाले हैं, तथा
अश्विना—जो दो-दो पदार्थों, यथा—गुरु-शिष्य, पति-पत्नी, स्वामी-सेवक, राजा-प्रजा आदि, में समाधानभाव देनेवाले हैं, इन सब गुणों से युक्त
नः सुभगा सरस्वती—हमारी सौभाग्य प्रदान करनेवाली भाग्यशाली वाणी, सदा
मयस्करत्—सुख प्रदान करनेवाली हो॥

भावार्थः—सुख-प्राप्ति के हेतु, सुभगा वाणी तथा सकल दिव्य गुणों का आह्वान इस पवित्र मन्त्र में दर्शाया है। आदि सृष्टि से, पुरातन काल से वेद में प्रतिपादित जो दिव्य गुण हैं, उन का हम अपनी आत्माओं में आह्वान करते हैं। उन सब दिव्य गुणों का ज्ञान प्राप्त कर उन्हें जीवन का अङ्ग बनाने के लिये, आत्म-चिन्तन द्वारा

उन को जीवन-व्यवहार में क्रियाशील बनाने का प्रयास करते हैं। इस प्रकार जीवन-यापन करते समय समूचे ईश्वर-प्रदत्त गुणों—मित्रभाव को, अखंडित प्रकाश को, लोकव्यवहार को, अहिंसाभाव, न्यायकारिता, वरने योग्य श्रेष्ठ भावना, तथा शान्त-चित्तता को हम अंगीकार करते हैं। तथा युगलद्वय के अश्विभावों को, यथा—गुरु-शिष्य पति-पत्नी, शासक-प्रजा, स्वामी-सेवक, जल-अग्नि, सब को दिव्य भावना से प्रभावित करते हैं।

इस प्रकार इन विविध दिव्य गुणों से युक्त हमारी सरस्वती वाणी सुभगा हो जावेगी। ऐसी श्रेष्ठ भाग्यशाली वाणी पुनः हमें सब प्रकार के सुख बरसानेवाली बन जावेगी। इन दिव्य गुणों और और सुभगा वाणी को प्राप्त करके ही मानव जीवन में सुख का सर्जन कर सकता है।

प्रभो! प्रेरणा दो कि हम सब इन दिव्य गुणों तथा सुभगा वाणी को प्राप्त कर जीवन में सुख की सरिता बहा सकें।।

गीत

आदिकाल से वेद-विहित,
सब गुण-विभूति मुझ पर बरसे।
जीवन के मरुस्थल का कण-कण,
पावन हो फिर से सरसे।।

ऐश्वर्य मधुरता सौम्य तेज को,
करूं वरण मैं क्षण-प्रतिक्षण।
रहें सफल मेरी जीवन-
यात्रा के चारों सुभग चरण।।

रहे समन्वय युग्मों में,
मधु धार वेद की सदा बहे।
सौभाग्य सरसता और अर्थ से,
वाणी मेरी पगी रहे।।

—०—

उषाकाल में जागो, और जीवन-क्रीड़ा में सुख पाओ

ऋषि:—आङ्गिरसः कुत्सः । देवता–उषा । छन्दः—भुरिक् पङ्क्तः । स्वरः—पन्चमः ॥

उदीर्ध्व जीवो असुर्न आगादप प्रागात्तम आ ज्योतिरेति ।
आरैक् पन्थां यातवे सूर्यायागन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः ॥

ऋ० १।११३।१६॥

पदार्थः—

उदीर्ध्वम्—प्रभु प्रेरणा करते हैं कि ऐ सोये हुए प्राणियो ! उठो जागो। क्योंकि
सूर्याय आगन्म—सूर्य उदय हो गया है, और उसके आगमन से
तमः अप प्रागात्—अन्धकार दूर हो गया है, और
ज्योतिः आ एति—प्रकाश चहुं ओर फैल गया है, और
यातवे पन्थाम् आरैक्—आने-जाने के मार्ग स्पष्ट दीखने लगे हैं। तथा
नः जीवः—हमारे जीवनों में
असुः आगात्—प्राणों की शक्ति संचार करने लग गई है।
यत्र प्रतिरन्त आयुः—जहां ज्ञान-प्रकाश के साधनों से जीवन-भर प्रीति से रमण करो ॥

भावार्थः—इस मंत्र में, उषाकाल में उठनेवाला जीव अपनी संपूर्ण आयु सुखमय कैसे व्यतीत करता है, इसी का सुन्दर वर्णन है।

उषाकाल के उदय होते ही रात्रिरूपी जीवन का अन्धकार विलीन हो जाता है। चहुं ओर विमल प्रकाश फैल जाता है, और जीवात्मा में नवप्राणों का संचार होने लगता है। ज्ञानरूपी सूर्य के उदय होते ही, जीवात्मा को अपना अभीष्ट पथ स्पष्ट दीखने लगता है। उसी देवयान पथ पर आते-जाते, समग्र आयुभर जीव क्रीड़ा करता रहता है, और आनन्द का उपभोग करता है।

अतः सब के लिये आदेश तथा प्रेरणा है कि इस अमृत-वेला

उषाकाल में उठो जागो, तथा पुरुषार्थ द्वारा कर्त्तव्य कर्मों में डट जाओ। तब जीवन का रात्रीरूपी अन्धकाराच्छादित निस्तेज प्रहर समाप्त हो जायेगा, तथा ज्ञानरूपी आनन्दमय मार्ग खुल जायेगा।

हे प्रभु! प्रेरणा दो कि हम सब निद्रा की गोद की को छोड़ कर प्रात: के इस अमृत-वेला में उठें, और तेरी उपासना द्वारा सच्चे अमृत-सुख का पान करें।

गीत

प्राची में फूटी किरण रक्त,
तम का सहसा अवसान हुआ।
अलसाये मन के प्रांगण में,
प्राणों का नव आह्वान हुआ॥

रश्मि-रथी का रथ प्रकटा,
हो उठा मुखर सब दिग्दिगन्त।
अवसाद मिटा अन्तरतम का
हो गया ग्लानि का तुरन्त अन्त॥

उठो! अमृत-वेला आयी है,
करो उषा के चरण स्पर्श।
पुरुषार्थ सँजोलो जीवन में औ,
भरो हृदय में अमित हर्ष॥

—:o:—

प्रातः जागनेवाले दम्पती किन रत्नों को पाते हैं ?

ऋषिः—दैर्घतमसः कक्षीवान् । देवते—दम्पती । छन्दः—त्रिष्टुप् । स्वरः—निषादः ॥

प्राता रत्नं प्रातरित्वा दधाति तं चिकित्वान् प्रतिगृह्या नि धत्ते।
तेन प्रजां वर्धयमान आयू रायस्पोषेण सचते सुवीरः ॥

ऋ० १।१२५।१॥

पदार्थः—

चिकित्वान्—विशेष ज्ञानवाला व्यक्ति (दम्पती),
प्रातरित्वा—प्रातःकाल में उठकर,
प्रातः रत्नं दधाति—प्रातः बंटनेवाले रत्नों को प्राप्त करता है ।
तं प्रतिगृह्य—पुनः उन रत्नों को भली प्रकार प्राप्त कर,
आनिधत्ते—उनका आदान-प्रदान करके उन्हें अपने जीवन में धारण कर लेता है।
तेन रायस्पोषेण—उन दिव्य गुणों द्वारा पुष्टि करनेवाले धनों को प्राप्त कर,
प्रजाम्—उनसे अपनी संतानों की पुष्टि तथा वृद्धि करता हुआ,
आयुः वर्धयमानः—और अपनी आयु को बढ़ाता हुआ,
सुवीरः सचते—सुवीर व्यक्ति सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करता है ॥

भावार्थः—ब्राह्म मुहूर्त्त में उठनेवाले दम्पती=नर-नारी को क्या-क्या रत्न मिलते हैं ? इसी का सुन्दर निरूपण इस ऋचा में है ।

प्रातः उठनेवाला व्यक्ति ज्ञान-रत्न को प्राप्त करता है। उसी अमृत-वेला में सर्वज्ञानमय प्रभु अपनी ज्ञान की निधि को बांटते हैं। जो भक्त अमृतवेला में प्रभु-भक्ति में मस्त होकर ध्यानावस्था में लीन हो जाते हैं, उन्हें प्रभु का प्रसाद, सच्चा ज्ञान तथा आनन्द मिलता है। वे प्रभु के गुण-कर्म स्वभाव को जानकर अपने जीवन में उन सब रत्नों को धारण कर लेते हैं । और प्रभु की प्रजा में यह सब रत्न बांटने में समर्थ हो जाते हैं।

इसी अमृतवेला में व्यायाम भ्रमण आदि करके ओषजन वायु को प्राणायाम द्वारा फेफड़ों में धारण कर लेते हैं। फलतः हृदय को स्वस्थ रखते हुए, सारे शरीर में शुद्ध रक्त का संचार करते है, ।र

शारीरिक बल तथा स्वास्थ्य को प्राप्त कर लेते हैं। स्वस्थ शरीर तथा निश्चिन्त मन द्वारा जीवन-संघर्ष में जुटकर वे वीर पुरुष उस रयिरूपी धन को प्राप्त करते हैं, जो पुष्टि तथा सुख का दाता है, ह्रास तथा दुःख का देनेवाला नहीं होता। उस रयि-पोष को प्राप्त कर, उत्तम संतानों की वृद्धि करते हुए, वे दीर्घ जीवन को प्राप्त कर लेते हैं। कवि ने ठीक कहा है—

हर रात के पिछले प्रहर में, इक अमृत लुटता रहता है।
जो जागत है सो पावत है, जो सोवत है सो खोवत है ।।

आज के बड़े-बड़े नगरों के कलुषित जीवन में इस वेद-वाक्य को सुनाने की बड़ी भारी आवश्यकता है। प्रातः जागरण की संपदा हमारे जीवनों में से दूर भाग रही है। रात्री को देर से सोना तथा प्रातः सूर्योदय के पश्चात् उठना यह परिपाटी बन रही है। मानव-शरीर धारण करके भी हम उल्लूवृत्ति में सुख मान रहे हैं।

प्रभु देव ! प्रेरणा दो, हम इस उलूकवृत्ति से निकलकर प्रातः काल में वितरित होनेवाले अमृत-रत्नों को प्राप्त करने के लिये ब्राह्म मुहूर्त्त में जागनेवाले बनें ।।

गीत

प्रातः की अमृतवेला में,
उठ नव रत्नों को प्राप्त करो।
हो प्रभु-भक्ति में ध्यान-लीन,
तन मन का सब सन्ताप हरो ।।

वह अमित ज्ञान आनन्द स्रोत,
नित भरो अमित आनन्द ज्ञान।
अनुपम रत्नों को लो बटोर,
निज जीवन को कर लो महान् ।।

सन्तान तुम्हारी सुखी रहे,
धन और पुष्टि से सदा पूर्ण।
घर में मंगल का राज्य रहे,
सब रहें सदा अवसाद-शून्य ।।

—:o—

प्रातः उठकर लक्ष्मी को बांधनेवाले दम्पती विविध सुखप्रद पदार्थ पाते हैं

ऋषिः—दैर्घतमसः कक्षीवान् । देवते—दम्पती । छन्दः—निचृत् त्रिष्टुप् । स्वरः—धैवतः ॥

सुगुरसत् सुहिरण्यः स्वश्वो बृहदस्मै वय इन्द्रो दधाति ।
यस्त्वायन्तं वसुना प्रातरित्वो मुक्षीजयेव पदिमुत्सिनाति ॥

ऋ० १।१२५।२॥

पदार्थः—

यः प्रातरित्वा—जो व्यक्ति प्रातःकाल उठकर, धर्म-अर्थ का चिन्तन कर, तदर्थ पुरुषार्थ करता है, और
आयन्तं पदिम्—आती हुई लक्ष्मी को
वसुना—अपने पास बसाने के लिये,
मुक्षीजयेव उत्सिनाति—मूंज से बनी रस्सी से बांध लेता है,
इन्द्रः—ऐश्वर्यदाता प्रभु, उसे
सुगुः—अच्छी गौओंवाला,
सुहिरण्यः—अच्छे सुवर्ण हीरे-मोती आदि से युक्त धनवाला, और
स्वश्वः—अच्छे घोड़े तथा गतिशील रथ विमान आदि से युक्त कर देता है ।
अस्मै—और उसके लिये
बृहत् वयः दधाति—बहुत दीर्घ आयु को प्रदान करता है ॥

भावार्थः—प्रातःकाल जागनेवाले उद्यमी पुरुष को क्या-क्या लाभ मिलते हैं, इस का सुन्दर वर्णन इस मन्त्र में है ।

जो निरालस व्यक्ति प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त्त में उठकर, धर्म-अर्थ की व्यवस्था को विचारकर तदनुसार प्रयत्न करता है, और आती हुई विविध पदार्थों से युक्त लक्ष्मी को अपने पास स्थिरवास करने के लिये उसे मानों मूंज के समान पक्की रस्सी से बांध लेता है, वही उस का यथार्थ उपभोग कर सकता है ।

प्रायः देखने में आता है कि पंचविध पुरुषार्थ करने पर लक्ष्मी तो आ जाती है, परन्तु उसके साथ-साथ भोग-प्रधान कुछ ऐसे दोष

आ जाते हैं, जिनके प्रभाव से लक्ष्मी टिकने के बजाय भोग-विलास के मार्गों में विलीन हो जाती है। उसी हानिप्रद अवस्था को रोकने के लिये इस ऋचा ने आदेश किया है कि इस आई हुई लक्ष्मी को संयमरूपी मूंज की रस्सी से बांध लो, और जोड़ने (*saving*) का रहस्य सीखो।

इस अमोघ युक्ति से जब वह धन-राशि स्थिर हो जावेगी, तब ऐश्वर्यदाता भगवान् उस संयमी इन्द्र गृहस्थ को, दुग्ध की धारायें देनेवाली गौवें, सुवर्ण-हीरे-मोती आदि उत्तम पदार्थ, तथा शीघ्र ले जानेवाले अश्व-मोटरें-यान आदि प्रदान करके, उसके स्वस्थ तथा तेज ओज से युक्त जीवन को दीर्घ आयु प्रदान कर देता है।

कितनी उत्कृष्ट भव्य भावना है, इस मानव जीवन की ॥ वैदिक जीवन दीन-हीन जीवन नहीं है। प्रातःकाल की उषा में जीनेवाला धन-धान्य से परिपूर्ण, हीरे-सोने-मोती जैसे चमकीले पदार्थों में चमकनेवाला वैभवशाली जीवन है। गो-अश्व-यान आदि साधनों से सम्पन्न, ओजस्वी दीर्घ जीवन बितानेवाला शत शरद् का सुरम्य उपभोग करनेवाला संयमी वैदिक जीवन है।

प्रभु देव ! कृपा करो। प्रेरणा दो कि हम सब सुपात्र बन कर पुरुषार्थ तथा संयम द्वारा स्वर्ग के समान भव्य जीवनों के भागी बनें।।

गीत

उठ ब्राह्म मुहूर्त्त की वेला में,
जो धन संपदा का चयन करे।
ऐश्वर्य और सुख-शैया पर,
वह दीर्घकाल तक शयन करे॥

लक्ष्मी उसकी परिचर्या में,
कर बांध रहे दिन और रात।
धन-धान्य स्वर्ण औ रत्नों का,
जीवन में उसके रहे साथ ॥

अर्चित लक्ष्मी से तेजस्वी,
ओजस्वी वह नर वीर रहे।
शत-शत शरदों की आयु भोग,
सुख-संपदा को वह सदा गहे॥

—०—

उषाकाल में सोनेवालों की आयु क्षीण होती है

ऋषिः—राहूगणपुत्रो गोतमः । देवता—उषा । छन्दः—निचृत् त्रिष्टुप् । स्वरः—ऋषभः ।।

पुनःपुनर्जायमाना पुराणी समानं वर्णमभि शुम्भमाना ।
श्वघ्नीव कृत्नुर्विज आमिनाना मर्त्तस्य देवी जरयन्त्यायुः ।।

ऋ० १।९२।१०।।

पदार्थः—

देवी—उषाकाल की दिव्यवेला,
पुराणी—पुरातन काल से
पुनः पुनः जायमानः—प्रतिदिन प्राची दिशा में पुनः-पुनः उदित होती है, और
समानं वर्णमभि शुम्भमाना—चहुं ओर एक जैसी शुभ लालिमा फैला देती है ।
मर्त्तस्य—जो इस समय सोये रहते हैं, उन मरणधर्मा मनुष्यों की
आयुः—आयु को
आमिनाना—हिंसा करनेवाली बनकर, इस प्रकार
जरयन्ति—जीर्ण-शीर्ण कर देती है । जैसे
श्वघ्नीव—मादा भेडिया कुत्तों को मार देती है । तथा
कृत्नुः विज—मादी बाज पक्षियों का छेदन कर देती है ।।

भावार्थः—इस मन्त्र में उषाकाल का सुन्दर वर्णन है। प्रतिदिन प्रातःकाल प्राची दिशा में एक अनुपम लालिमा छा जाती है। जब से सृष्टि बनी, तब से प्रति प्रातःकाल प्रकृति देवी यह नाटक खेल रही है । उषा उदित हो रही है, और इस के अवतरण के साथ ही समूची प्राची दिशा में एक समान शुभ्र गुलाबी रंग प्रसारित हो जाता है । मरणधर्मा मानवों को प्रेरणा मिलती है कि वे इस शुभ्र-वर्णा देवी के दर्शन करें, तथा ब्राह्म मुहूर्त्त में उठकर आत्मा-परमात्मा का चिन्तन करें, और अपने जीवनों में दिव्य गुणों को

शुभ्र लालिमा भरें। तथा मनु महाराज के शब्दों में—"ब्राह्मे मुहूर्त्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत्" अर्थात् ब्राह्म मुहूर्त्त में उठकर आत्म-प्रकाश को जागृत करें, और धर्म तथा अर्थ का चिन्तन करें।

मन्त्र के दूसरे भाग में बताया है कि जो मूढमति मानव इस अमृतवेला में सोये रहते हैं, उन की आयु को यह बलवती देवी क्षीण कर देती है। जैसे भेडनी कुत्तों को मार देती है, तथा मादा बाज पक्षियों को काट डालती है।

इस प्रकार एक ओर आयु क्षीण होने का भय दर्शा दिया है, और दूसरी ओर उषा काल में जागृत होने के गुण दर्शा दिये हैं।

उषाकाल में उठकर जो व्यक्ति खुली हवा में भ्रमण व्यायाम प्राणायाम आदि करेगा, उसका शरीर स्वभावतः स्वस्थ तथा नीरोग रहेगा। फलस्वरूप उसे बलवती दीर्घ आयु प्राप्त होगी।

इसी अमृतवेला में जो ध्यानी, अष्टांग योग का पालन कर, आत्मा-परमात्मा का चिन्तन करेगा, वही उस आनन्द-स्वरूप भगवान् की परम आनन्द देनेवाली स्थिति का सुख से स्पर्श करेगा, तथा स्वयं आनन्दी बन कर संसार में सुख तथा आनन्द का प्रसार कर सकेगा।

प्रभु प्रेरणा दें कि इस शुभ्र उषा देवी के दर्शन कर हम सब अमृतवेला के रसों का आस्वादन कर सकें॥

गीत

प्रति प्रातः की पहिली प्रहरि में,
यह कौन आया श्रृंगार किये।
प्राची के सुन्दर मुखड़े में,
यह कौन आया सिंदूर लिये॥

अति शुभ्र लालिमा फैलती,
पुरातन उषा वेला आई ।
पुनः पुन प्रखर प्रकाश करती,
जीवन जागृत करने आई ॥

जो सोये रहते उन का यह,
धीरे-धीरे बल हर लेती ।
संहार निरन्तर करती यह,
है रूप भयंकर धर लेती ॥

श्वानों को निःशेष भेड़िया,
ज्यों निर्मम होकर करता ।
चिड़िया पर ज्यों झपट बाज,
उनके जीवन को है हरता ॥

जागो ! मरणधर्मा जागो,
देवी का स्वागत गान करो ।
उषा अमृत वेला जागो,
आत्म-परमात्म का ध्यान धरो ॥

—:o:—

सदा सब के हितकारी सुखदाता प्रभु की मैं स्तुति करता हूं

ऋषिः—मधुच्छन्दाः। देवता—अग्निः। छन्दः—गायत्री। स्वरः—षड्जः॥

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् ।
होतारं रत्नधातमम् ॥ ऋ० १।१।१॥

पदार्थः—

अग्निम्—मैं प्रकाशस्वरूप परमेश्वर की, तथा अपनी गतिशील आत्मा और भौतिक अग्नि की

ईळे—स्तुति करता हूं, जो कि

पुरोहितम्—सदा सब का हित करनेवाला है,

यज्ञस्य देवम्—ज्ञानरूपी यज्ञ तथा शिल्प-कृषिरूपी क्रियाओं का देनेवाला है,

ऋत्विजम्—जो वसंत आदि ऋतुओं का निर्माण करनेवाला, तथा समय-समय पर सुखप्रद पदार्थ देनेवाला है,

होतारम्—जो प्राणिमात्र को योगक्षेम देनेवाला होता है,

रत्नधातमम—जो पृथ्वी आदि सुन्दर लोकों को धारण करनेवाला, तथा स्वभक्तों को स्वर्ण रत्न आदि धन देनेवाला है॥

भावार्थः—जैसे पिता अपने पुत्र को उपदेश करता है कि मेरे साथ इस प्रकार आदरपूर्वक बोलो, इसी प्रकार प्रभु जीव को मार्ग दर्शाते हैं कि इस प्रकार मेरी स्तुति किया करो। प्रभुभक्त पुकारता हैं कि मैं उस अग्नि-स्वरूप परमेश्वर की स्तुति तथा उपासना करता हूं, जो ज्ञानस्वरूप है।

जीवन को सुखी तथा सफल बनाने के लिये जो-जो मुख्य पदार्थ आवश्यक हैं, उन सब का वर्णन इस मन्त्र में स्तुतिरूप में आ गया है। समय-समय पर ऋतु-ऋतु के अनुसार जो भी सुख तथा हित के साधन हैं, वे मिलते रहें, तभी सुख मिलता है। और वह साधन तब मिलेंगे, जब उनको प्राप्त करने के लिये पर्याप्त धन होगा। वह अधिकार विशेष ज्ञान द्वारा शिल्प तथा कृषि-क्रियाओं के सम्पादन से मिलेगा।

इस सारी प्रक्रिया के लिये सब से प्रथम साधक उस ज्ञानस्वरूप प्रभु की स्तुति करता है। फिर इन सब सुख के साधनों को पुरुषार्थ द्वारा प्राप्त करने के लिये वह अपनी आत्मशक्ति को प्रेरित करता है, और भौतिक अग्नि के ज्ञान द्वारा शिल्प तथा कृषि आदि शुभ कर्मों से धन का उपार्जन करता है। ऐसा करने से ही स्वर्ण रत्न आदि धन की उपलब्धि से व्यावहारिक जीवन तथा प्रभु की उपासना से पारमार्थिक जीवन सफल हो सकते हैं।

इसी सुखी-सफल जीवन के लिये भक्त तन्मय होकर प्रभु से कहता है—"हे अग्निदेव! मैं तेरी शरण में आया हूं, मेरा उद्धार करो॥"

गीत

ज्ञानरूप प्रभु अग्निदेव ! तव,
तन्मय होकर स्तवन करूं।
सब जग के हितसाधक भगवन्,
नम्र भाव से विनय करूं॥

ज्ञान और विज्ञान प्रदाता,
शिल्प और कृषि अपनाऊं।
वरदानों का लाभ उठाऊं,
जीवन का सब सुख पाऊं॥

जागरूक बन योगक्षेम का,
ऋतु-ऋतु में उपभोग करूं।
जीवन को सम्पूर्ण बनाऊं,
तव चरणों में सीस धरूं॥

—:०:—

रक्षा के लिये स्वर्णदाता प्रभु का आह्वान

ऋषिः—काण्वो मेधातिथिः। देवता—सविता। छन्दः—गायत्री। स्वरः—षड्जः॥

हिरण्यपाणिमूतये सवितारमुप ह्वये।
स चेत्ता देवता पदम्॥ ऋ० १।२२।५॥

पदार्थः—

ऊतये—अपनी रक्षा तथा प्रीति के लिये,
सवितारम्—उस प्रभु को, जो सकल संसार का रचनेवाला है,
पदम्—जो चराचर जगत् में व्याप्त है, तथा
हिरण्यपाणिम्—जो मानो हिरण्यमय हाथवाला, स्वर्ण रत्न आदि धनों का देनेवाला है, उस प्रभु को
उपह्वये—मैं प्रीति से पुकारता हूं।
स चेत्ता—वह भगवान् सब कुछ जाननेवाला है, तथा
देवता—देवों का देव, सब सुखों को देनेवाला है॥

भावार्थः—इस मन्त्र में अपनी रक्षा के लिये, उत्तम धन स्वर्ण रत्न आदि की प्राप्ति के लिये, सविता देव प्रभु का आह्वान किया गया है। व्यावहारिक जीवन की सफलता के लिये धन प्राप्त करना अनिवार्य है। इसके बिना जीवन सुखी तथा सुरक्षित नहीं रह सकता।

इस के लिये हिरण्यपाणि भगवान् से प्रार्थना की गयी है, जिस के हाथ में मानों स्वर्ण भरा है।

इस स्वर्ण-धन की प्राप्ति की उत्कट इच्छा होने पर, भगवान् के उक्त गुणों को धारण कर, ज्ञान के द्वारा उत्पादन क्रिया में लग जाना चाहिये। तथा उसे प्राप्त कर लेने के दृढ़ निश्चय से उस उत्पादक गति में व्याप्त होकर तब तक उस कार्य को करते जाना चाहिये, जब तक कि स्वर्ण-रत्नमयी लक्ष्मी हाथ में न आ जाय। तब जीवन स्वतः रक्षित तथा प्रीति से भरपूर हो जाता है।

हिरण्यपाणि प्रभो ! हमारे व्यावहारिक जीवनों को अपने वरदान से सुखी करो ॥

गीत

हाथों में थामे स्वर्ण कलश,
प्रभु ! संपद् निज बरसाओ ।
अग-जग में व्यापक हे सविता,
जीवन मेरा सरसाओ ॥

तुम सर्जनशील उदार कुशल,
अमित ज्ञानभंडार तुम्हीं ।
जब-जब भक्तों पर पीर पड़े,
उनके नित संकटहार तुम्हीं ॥

भर दो मेरी खाली झोली,
मणि-मुक्ता से धन-धान्यों से ।
ऐश्वर्य मार्ग पर जूझ पड़ूं,
निज पौरुष से मन-प्राणों से ॥

—:o:—

ऐश्यर्यदाता प्रभु! आप सा महान् न कभी कोई हुआ, न होगा

ऋषिः---राहूगणो गोतमः । देवता–इन्द्रः । छन्दः---निचृदास्तार-पंक्तिः । स्वरः–पञ्चमः ।।

आ पंप्रौ पार्थिवं रजों बद्बधे रोचना दिवि ।
न त्वावाँ इन्द्र कश्चन न जातो न जनिष्यतेऽति विश्वं
ववक्षिथ ॥ ऋ० १।८१।५॥

पदार्थः—

इन्द्र---हे परमैश्वर्यदाता प्रभो !
त्वावाँ–जो आप हैं, उस आप जैसा महान्
कश्चन न जातः---न कभी कोई उत्पन्न हुआ है,
न जनिष्यते—न कभी उत्पन्न होगा । आपने
पार्थिवं रजः---पृथ्वी के एक-एक कण-परमाणु को
आ पप्रौ—चहुं ओर से व्याप्त कर रखा है । तथा
दिवि रोचना-–द्युलोक में सब प्रकाशमान लोकों को,
बद्बधे---एक-दूसरे के आकर्षण के साथ बांध रखा है ।
विश्वम्---सारे विश्व को,
अति ववक्षिथ–यथायोग्य सुन्दर नियमों में नियन्त्रित कर रखा है।।

भावार्थः–इस मन्त्र में प्रभु की अनुपम महिमा का सुन्दर वर्णन है। जगदीश पृथ्वी से लेकर आकाशपर्यन्त सब कण-कण में ओत-प्रोत हो रहा है । उस के अटल नियमों के अनुसार सौरमण्डल के सब प्रकाशमान लोक-मण्डल एक-दूसरे के आकर्षण से बंधे हुए अपने-अपने निर्दिष्ट मार्ग पर चल रहे हैं । एक-दूसरे से वे कभी टकराते नहीं ।

वह प्रभु संपूर्ण विश्व को तथा विश्व में स्थित सब चेतन-अचेतन जगत् को अपने-अपने यथायोग्य नियमों में रख रहा है। उस ऐश्वर्यप्रद महान् प्रभु जैसा न कभी कोई हुआ, और न कभी होगा—न भूतो न भविष्यति ।

उस अनुपम अद्वितीय सर्वशक्तिमान् महान् सत्ता को हमारा शत-शत प्रणाम ॥

गीत

है कण-कण में वह व्याप रहा,
भू पर नभ में नित दीप्तिमान ।
ये सकल लोक औ तारागण,
सब बंधे नियम में हैं समान ॥

सब एक सूत्र में ओत-प्रोत,
तुम ही उन के हो सूत्रधार ।
तुझसा न हुआ होगा न कभी,
कोई, महिमा तुमरी अपार ॥

सुख-सुधा सरस के घन उदार,
मेरा तुम को शत-शत प्रणाम ।
जड़-चेतन के घट-घट वासी,
बिसरूं न तुम्हारा कभी नाम ॥

—०—

सुख-शान्ति कैसे मिले ?

ऋषिः—राहूगणपुत्रो गोतमः। देवताः—विश्वे देवाः। छन्दः—निचृत्त्रिष्टुप्। स्वरः—धैवतः॥

शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्यमा ।
शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुरुक्रमः ।

ऋ० १।९०।९॥

पदार्थः—

मित्रः—सब का सच्चा सखा प्रभु, तथा हमारी मैत्रीभावना,
नः शम्—हमें शान्ति तथा सुख प्रदान करे।
वरुणः—सब से श्रेष्ठ वरने योग्य प्रभु,तथा हमारी उत्कृष्ट भावना,
नः शम्—हमें शान्ति देनेवाले हों।
अर्यमा—न्याय करनेवाला प्रभु हमें न्यायप्रिय बनाये, तथा
नः शं भवतु—हमारे जीवन में शान्ति देवे।
इन्द्रः—ऐश्वर्यस्वरूप प्रभु, हमें ऐश्वर्य-प्राप्ति के लिये प्रेरित कर,
नः शम्—हमें ऐश्वर्यसुख प्रदान करे।
बृहस्पतिः—महान् वेदज्ञान का पालक प्रभु,हमें ज्ञान प्रदान करे।
विष्णुः—तथा चराचर जगत् में व्याप्त प्रभु, और
उरुक्रमः महान् बलशाली प्रभु,
नः शम्—हमें उत्तम गुण तथा शक्ति देकर सदा सुखी आनन्दित तथा शान्त रखे॥

भावार्थः—सुख तथा शान्ति की प्राप्ति के लिये इस पवित्र मन्त्र द्वारा उस भगवान् से प्रार्थना की गई है, जो मित्र-वरुण-अर्यमा-इन्द्र-बृहस्पति-विष्णु तथा उरुक्रम है।

सुख-शान्ति का पिपासु जीव इन्हीं उत्कृष्ट गुणों को जीवन में धारण करते ही उस शाश्वत शान्ति का रसास्वादन करने लगता है।

"मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे" अर्थात् मैं सब प्राणिमात्र को मित्र की दृष्टि से देखूं—इस वैदिक लोरी में जब मानव झूमेगा,उस का कोई बैरी ही संसार में न रहेगा, तो शान्ति तो स्वयमेव स्थित रहेगी, तथा उसका जीवन मैत्री-भाव के पलने में सुसमीर से झूलता रहेगा।

इसी प्रकार उन्नति के मार्ग पर अग्रसर, वरनेयोग्य शुभ गुणों को धारण करने वाला जब वह वरुण बन जावेगा, तो यश की कीर्ति-सुगन्ध से जीवन सुखमय हो जावेगा।

न्याय की भावना से प्रेरित, जब किसी से मनसा वाचा कर्मणा अन्याय न करेगा, तो आत्मशान्ति अन्तर्हृदय को अपना सदन बना लेगी। ऐश्वर्यप्राप्ति के साधनों में जुटा हुआ सुक्रतु तथा शतक्रतु बना हुआ, जब सब प्रकार के सुख-साधनों को सम्पादित कर सोमी बन जावेगा, किसी प्रकार का अभाव ही उस के जीवन में न रहेगा, तो सुख-शान्ति तो दासी बनकर उस इन्द्र की सदा परिचर्या करेगी ही।

वेदज्ञान का पालन करनेवाला बृहस्पति बनेगा, तो उसी वेद-ज्ञान से प्राप्त विज्ञान-धन से वह सदा सुख का उपभोग करेगा। सब गुणों में व्याप्त विष्णु की भान्ति जब जीव का प्रवेश भी सब दिव्य गुणों में निरन्तर होता रहेगा, तब वह सब गुणों का स्वामी बन कर दिव्य सुखों का अनुभव करेगा।

इस प्रकार इन विविध गुणों को जीवन का अंग-अंगी बना कर वह उरुक्रम बन जावेगा। सब प्रकार का पराक्रम उस की सुख-शान्ति की सदा रक्षा करेगा।

प्रभुदेव! कृपा करो! हम आप के इन विविध गुणों को जीवन में धारण कर सदा सुखी तथा शान्त रहें॥

गीत

जगदीश हमारा सखा मित्र,
सदा शान्ति की वृष्टि करे।
वरने योग्य वही वरुण देव,
शान्ति से हम सब को भरे॥

न्यायकारी वह महान् देव,
सदा न्याय से शान्त करे।
सब ऐश्वर्यों का दाता देव,
सुख-सम्पद का दान करे॥

वेदज्ञान का महान् दाता,
घर-घर व्यापक शान्त करे।
महान् शक्ति विपुल बलदाता,
सौम्य शान्ति का दान करे॥

—:०:—

सोम उत्पादक पालक तथा कल्याण करनेवाला है

ऋषिः—राहूगणपुत्रो गोतमः । देवता—सोमः । छन्दः—पादनिचृद् गायत्री । स्वरः—षड्जः ॥

त्वं सोमासि सत्पतिस्त्वं राजोत वृत्रहा ।
त्वं भद्रो असि क्रतुः ॥ ऋ० १।९१।५॥

पदार्थः—

त्वं सोमासि—तू सोम है ।
त्वं सत्पतिः—तू सत्पुरुषों का पालन करनेवाला है,
उत राजा—और राजा की भान्ति द्युतिमान् है ।
वृत्रहा—बादलों को नष्ट करनेवाला,
त्वं भद्र क्रतुः असि—तू कल्याणकारी है ॥

भावार्थः—वेदार्थ-प्रक्रिया में सोम शब्द (१) परमात्मा (२) जीवात्मा, तथा (३) सोम ओषधि का द्योतक है ।

(१) परमात्मा सोमरूप में संसार की उत्पत्ति करनेवाला है । सत्पुरुषों की पालना करता है । सब राजाओं का राजा, तथा दुष्टों का विनाश करनेवाला है। वह सब को बुद्धि प्रदान करता है, तथा सब जीवों का कल्याण करता है ।

(२) इसी प्रकार सोम ओषधि का रस भी शरीर में से सब रोगों को दूर करता है तथा शारीरिक बल देकर ओज प्रदान है ।

(३) इसी प्रकार सोम ओषधिसमूह से बल प्राप्त कर, तथा भगवान् से बुद्धि प्राप्तकर मानव अपने आप को प्रेरित करता है कि—'तू सोम है । जीवन में बुद्धिपूर्वक सुन्दर कार्य करके तूने सत्पुरुषों का सदा पालक बनना, और सब प्रकार की विघ्न-बाधाओं को इस प्रकार दूर करते जाना, जैसे सूर्य बादलों को छिन्न-भिन्न करता रहता है ।'

इस प्रकार धार्मिक सुन्दर कर्त्तव्य कर्म करते हुए जीवन में राजा की भान्ति सदा चमकते रहना मानव-उत्कर्ष के लिये कितनी सुन्दर उत्प्रेरणा है ॥

गीत

तू सुन्दर है सोम मधुर,
सत्कृतियों का भण्डार।
श्रेष्ठ जनों का पालक तू,
औ द्युतियों का भण्डार ॥

सोम मधुर रस औषध से,
करे सब रोग विनाश ।
ओजस्वी तेजस्वी बन,
करे विघ्नों का नाश ॥

ईश्वर से बुद्धि ले बहे,
शुभ कर्मों का प्रवाह।
तू भद्र ऋतु तव सुकृति,
वहती सरिता अथाह ॥

—:०:—

हे अद्भुत मित्र प्रभो ! तेरी मैत्री में हम सदा सुखी रहें

ऋषिः—आङ्गिरसः कुत्स । देवता—अग्निः । छन्दः—विराड् जगती। स्वरः—निषादः ॥

देवो देवानामसि मित्रो अद्भुतो वसुर्वसूनामसि चारुरध्वरे ।
शर्मन्त्स्याम तव सप्रथस्तमेऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥
ऋ० १।९४।१३॥

पदार्थः—

अग्ने—हे प्रकाशस्वरूप प्रभो !

अध्वरे—जीवन-संघर्ष में, अथवा उपासनारूपी यज्ञ में, आप ही

देवो देवानामसि—देवों के महान् देव हो। आप ही

मित्रः अद्भुतः—अद्भुत मित्र हो।

वसुर्वसूनामसि—वसाने योग्य पदार्थों में आप ही सब से उत्तम वसाने योग्य हो ।

चारुः असिः—आपही सब से श्रेष्ठ हो ।

तव सप्रथस्तमे—हम आप के अति विस्तीर्ण गुण कर्म स्वभाव को धारण करके,

शर्मन्त्स्याम—सुख-शान्ति को प्राप्त करें ।

वयं तव सख्ये—हम आप की मित्रता से,

मा रिषाम—कभी वंचित न रहें ॥

भावार्थः—प्रभु के गुणों के कीर्त्तन तथा धारण से ही मानव को शाश्वत सुख तथा शान्ति मिलती है। वही दिव्यगुणों की खान है, जिससे हमने दिव्य गुण प्राप्त करने हैं। जिस से जीवन के संघर्ष में सफलता प्राप्त होती है, वही हमारा अद्भुत मित्र है। वही घट-घट वासी सब वसुओं का वसु है। सब प्रकार की निधियां उसी से हम को मिलती हैं। वही प्रीतम प्यारा चारु देव है। उसी के विस्तीर्ण विख्यात अनन्त गुण कर्म स्वभावों को अंगीकार करके हमें सदा रहने-वाला सुख तथा परमानन्द मिलता है।

हे प्रकाशस्वरूप प्रभो ! हम आप के उपासना रूप यज्ञ से कभी विमुख न हों। हमारा मनरूपी भंवरा सदा आपके मधुर ओम नाम

का गुंजार करता हुआ, अनुपम भक्तिरस का पान करता हुआ, मस्ताना सोमी बन, सब क्लेशों-कष्टों से दूर रहता हुआ परमानन्द का उपभोग करे—ऐसा वरदान हमें प्रदान करो ॥

गीत

दिव्य गुणों को भर दो हम में,
हे दिव्यगुणों की खान !
हो वसु-श्रेष्ठ हो मित्र हमारे,
है यही हमारा मान ॥

आओ प्यारे प्रियतम आओ,
उतरो मम अन्तस्तल में ।
मेरे जीवन के मरुस्थल में,
बरसाओ सुख पल-पल में ॥

है सखाभाव जोड़ा तुम से,
कर दो जीवन को विमल सरस ।
दुःख दर्दों पर सब कष्टों पर,
मिल जाय तुम्हारा पुण्य परस ॥

—०—

उषा के समान प्रभु की उत्तम ज्योति के दर्शन

ऋषिः—आङ्गिरसः कुत्सः। देवता—उषा । छन्दः—निचृत् त्रिष्टुप् । स्वरः—धैवतः ।।

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागाच्चित्रः प्रकेतो अजनिष्ट विभ्वा ।
यथा प्रसूता सवितुः सवायँ एवा रात्र्युषसे योनिमारैक् ।।

ऋ० १।११३।१।।

पदार्थः—

यथा—जिस प्रकार
सवितुः सवाय—सूर्य के प्रकाश से,
प्रसूता रात्रीः—रात्रि में उत्पन्न हुआ अन्धकार दूर हो जाता है, तथा
उषसे योनिमारैक्—घर-घर में उषाकाल का प्रकाश फैल जाता है,
एवा—ऐसे ही
चित्रः—विचित्र गुणोंवाला, तथा
प्रकेतः—विशेष ज्ञानवाला पुरुष,
इदं ज्योतिषां श्रेष्ठं ज्योतिः—इस ज्योतियों में सब से श्रेष्ठ प्रभु की ज्योति को
आगात्—प्राप्त कर लेता है । तथा
विभ्वा अजनिष्ट—ऐश्वर्यदाता प्रभु के साथ संयुक्त होकर सब सुखों को प्राप्त कर लेता है ।।

भावार्थः--अविद्यान्धकार से छूट कर प्रभु की ज्योति का दर्शन करता हुआ मानव ऐश्वर्य-सुख कैसे प्राप्त करता है, इस का सुन्दर चित्रण इस ऋचा में है ।

सुन्दर उपमा देकर दर्शाया है कि जिस प्रकार सूर्य के उदय होने पर रात्रि का अन्धकार दूर हो जाता है,और उषा का सुन्दर प्रकाश घर-घर में प्रकाशित हो जाता है और सब प्राणी उस अमृतवेला में उजाले को प्राप्त कर जागृत होकर अपने-अपने अभीष्ट कामों में लग जाते हैं, इसी प्रकार मनुष्य के अन्तस्तल में समाई अविद्यान्धकार की कालिमा प्रकाशस्वरूप प्रभु की ज्योति के दर्शन से विलीन हो जाती है।

ध्यानावस्था में जब आत्म-तत्त्व परमात्म-तत्त्व में निमग्न हो जाता है,तो एक अद्भुत महान् ज्योति का हृदयाकाश में अनुभव होता है। ज्योतियों में श्रेष्ठ वही ज्योति आत्म-तत्त्व में चहुं ओर से प्रवेश कर जाती है । तब चित्त में पड़ी हुई सब वासनायें विलीन होने लगती हैं ।

इस ज्योति के दर्शन तब होते हैं, जब जीव अद्भुत गुणोंवाला बनता है, और प्रभु का ज्ञान उसकी बुद्धि में प्रवेश कर जाता है। तब विभु प्रभु से संयुक्त, उसकी अनुकम्पा से वह जीव समग्र ऐश्वर्यों को प्राप्तकर परमानन्द का उपभोग करता है ॥

गीत

अरुणोदय के स्पर्शमात्र से,
रात्री प्रसूता अलसायी ।
अन्धकार सब पल में भागा,
घर-घर मधु लाली छायी ॥

विमल ज्ञान से उद्भासित, ली
आत्म-तत्व ने अंगड़ाई ।
आदित्य वर्ण प्रभु-दर्शन से,
मधुर पुलक मन में छाई ॥

तमोराज्य सब पल में भागा,
कलश ज्ञान का छलक उठा ।
आनंद-रश्मि का मानस में,
पूर पलक में ललक उठा ॥

—:o:—

सूर्य-समान प्रभु-ज्योति की अनुभूति

ऋषिः—आङ्गिरसः कुत्सः । देवता—सूर्यः । छन्दः—निचृत् त्रिष्टुप् । स्वरः—धैवतः ॥

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥

ऋ० १।११५।१॥

पदार्थः—

सूर्यः—सूर्य के समान प्रकाश करनेवाली प्रभु की ज्योति,
उदगात्—उपासक के हृदयाकाश में उदय हो गई है ।
अनीकम्—जो प्रभु इन भौतिक चक्षुओं से न दीखनेवाला है, परन्तु जो
मित्रस्य—सूर्य की
वरुणस्य—चन्द्रमा की, तथा
अग्नेः—अग्नि की मानो
चित्रं चक्षुः—अवश्य विचित्र आंख है, इस सब को प्रकाश प्रदान करनेवाला है, तथा जो
देवानाम्—दिव्यगुणों को प्रदान करनेवाला है, जो
द्यावापृथिवी अन्तरिक्षम्—द्युलोक, पृथिवीलोक तथा अन्तरिक्ष में
आप्रा—चहुं ओर से व्याप्त होकर, परिपूर्ण हो रहा है ।
जगतस्तस्थुषश्च आत्मा—स्थावर तथा जंगम जगत् में गति करनेवाला वह अन्तर्यामी है ।

भावार्थः—यह मन्त्र उपासना-परक है ।

ध्यानावस्था में स्थित प्रभुभक्त उस प्रभु की अद्भुत ज्योति को, सूर्य के समान जगमगाती अपने हृदयाकाश में अनुभव करता है, और प्रभु-भक्ति की मस्ती में मस्त हो कर पुकार उठता है कि वह अद्भुत ज्योति उदय हो गई, जो मेरे भीतर दिव्य गुणों को जगानेवाली है । वह सूर्य को तीव्र ज्योति प्रदान करती है, चन्द्रमा में आह्लादजनक कोमल सुषमा प्रदान करती है, और अग्नि तथा विद्युत् में प्रकाश बन कौंध जाती है । इस प्रकार भौतिक नेत्रों से न दीखने पर भी, सब ज्योतियों की यह ज्योति है ।

स्थावर तथा जंगम जगत् में वही प्रभु सूर्य के समान गतिशील अन्तर्यामीरूप से विचरण कर रहा है । द्युलोक पृथ्वीलोक तथा

अन्तरिक्ष में उसी आदित्यवर्ण भगवान् का प्रकाश चहुंदिक् फैल रहा है।

'यत् ब्रह्माण्डे तत् पिण्डे' अर्थात् जो ब्रह्माण्ड में है,वही इस शरीर-रूपी पिण्ड में है। इस लोकोक्ति के अनुसार उपासक भक्त अपने हृदयाकाश में भी सर्वत्र चहुं ओर उस ज्योतिस्वरूप ब्रह्म की बृहद् ज्योति को अनुभव करता है। उसी ज्योति से आवृत अपने हिरण्यमय हृदय-कोष में अपनी आत्मा द्वारा उस उद्भासित परम आत्मा में प्रवेश कर जाता है—**'आत्मना आत्मानमभिसंविवेश"**।

उस दैवी स्थिति में आत्मा परमानन्द तथा परमशान्ति को प्राप्त कर उस परमधाम को प्राप्त कर लेती है। वैदिक सन्ध्योपासना में इस मन्त्र की विशेषता मानकर ही इसका समावेश किया गया है। सन्ध्या करते-करते इस मन्त्र पर पहुंच कर आत्मा प्रभु की ज्योति को, सूर्य के समान साक्षात् निहारती हुई उस परमानन्द की स्थिति में लीन हो जाती है।

प्रभु देव! कृपा करो! हमें भी अपने अद्भुत आदित्यवर्ण स्वरूप की अनुभूति करावो॥

गीत

सूर्य चन्द्र पावक ज्योतित हैं,
एक तुम्हारी ज्योति अपार।
मेरे मानस की कुटिया का,
कब भागेगा अन्धकार॥

दिव्य तुम्हारे ज्योति-विलय के,
दर्शन में हूं मैं असमर्थ।
इन आंखों से समझ न पाऊं—
गा, उन किरणों का कुछ अर्थ॥

जड़ जंगम में घट-घट व्यापी,
प्राणों में तुम अवघट प्राण।
अन्तरिक्ष नक्षत्रलोक में,
भू पर दीपित सूर्य समान॥

मेरे अन्तस्तल में उतरो,
चिदाकाश में ज्योति भरो।
रोम-रोम में पुलक जगाओ,
पल में सब भव-भीति हरो॥ —:०:—

सब इष्ट पदार्थ देकर हे प्रभो ! हमारी सुमति नष्ट न करना

ऋषिः—औशिजः दैर्घतमसः कक्षीवान् । देवता:—विश्वे देवा। इन्द्रो वा। छन्दः—त्रिष्टुप्। स्वरः—धैवतः ॥

मा सा ते अस्मत् सुमतिर्वि दंसद्वाजप्रमहः समिषो वरन्त ।
आ नो भज मघवन् गोष्वर्यो मंहिष्ठास्ते सधमादः स्याम ॥
ऋ० १।१२१।१५॥

पदार्थः—

वाजप्रमहः—हे विशेष ज्ञान तथा बल के प्रवाह करनेवाले,
मघवन्—ऐश्वर्यदाता प्रभो !
इषः—सब प्रकार के इष्ट पदार्थ
वरन्त—प्रदान करते हुए,
ते—अपनी अनुकम्पा से
अस्मत् सा सुमतिः—हमारी वह उत्तम बुद्धि
मा विदसत्—नष्ट न कर देना।
अर्यः—हे सर्वश्रेष्ठ स्वामिन् !
आ नः गोषु भज—हमें सब ओर से गोशक्तियां प्रदान करो।
मंहिष्ठः—तथा महान् बनाओ। परन्तु
ते सधमादः—तेरे उस परम आनन्दप्रद स्वरूप में
स्याम—हम सदा स्थित रहें। तुझे कभी न भूलें॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उत्तम सुमति सुमेधा प्राप्त करने की प्रार्थना है।

महान् ज्ञान तथा बल के भण्डार और समग्र ऐश्वर्यदाता प्रभु से भक्त प्रार्थना करता है कि हे प्रेरक देव! सब प्रकार के इष्ट पदार्थ हमें जीवन में प्रदान करो,परन्तु हमारे अन्तःकरण से हमारी सुमति को कभी नष्ट न करना। यह मति आप की कृपा से धारणावती बुद्धि

(सुमेधा-प्रज्ञा) बनी रहे। इस प्रकाश से हम सदा सन्मार्ग पर चलते हुए देवयान पथ के पथिक बने रहें।

पृथ्वी के हम स्वामी हों, तथा पृथ्वी-स्थित सब पदार्थ हमें सुख देनेवाले हों। सुन्दर गायें हमें दुग्ध की धारायें देनेवाली हों। हमारी इन्द्रियां सदा हमारे वश में रहें, तथा बलवती होती हुई भी, संयम की सुमंत्रणा में विचरण करें। कभी भी पाप की ओर प्रवृत्त होकर विषय-वासना में लिप्त न हों। ज्ञान का प्रकाश हमारे जीवन-पथ को सदा आलोकित करता रहे।

विकास के पथ पर पग बढाते हुए उसी उमारूपी बुद्धि द्वारा आप के अत्यन्त रसीले मदभरे आनन्दभरे स्वरूप में निमग्न हो जावें, जहां क्लेश तथा शोक का किंचित्मात्र भी स्पर्श नहीं। जहां मस्ती ही मस्ती है। **'नाम खुमारी नानका चढ़ी रहे दिन रैन'**। उस तेरी ओम् नाम की खुमारी में हम दिन-रात मस्त रहें। वही परमानन्द की परा गति है। हे प्रभो ! हमें वही सुमति प्रदान करो।

आज के युग में इस सुमति की कितनी भारी आवश्यकता है। जिस सुमति ने संयम का प्रदीप जीवन में जलाया था, वहां कुमति के कारण उच्छृंखलता का बोलबाला है। पश्चिमी विचारधारा के प्रवाह में हमारी युवा पीढ़ी भोगविलास के कुपथ पर दौड़ रही है। उसे स्वाभाविक गति मानकर, कुमति के कारण, संयम नाम के शब्द से ही वे हंसा करते हैं। भौतिक चकाचौंध में आध्यात्मिक मूल्यों की सर्वथा तिलांजलि दे बैठे हैं। वैदिक विचारधारा की मानों आधार-शिला ही हिल रही हो,ऐसी दशा में वैदिक भक्त साश्रु प्रभु से विनती करते हैं कि हे नाथ ! **'अस्मत् सुमतिः मा विदसत्'**हमारे राष्ट्र की सुमति को नष्ट मत करो।

जँह सुमति तँह सम्पद् नाना।
जँह कुमति तँह विपद निदाना॥

प्रभो ! प्रेरणा करो, हमारी मतियों को सुमति बनाये रखो॥

गीत

सुख-साधन से भरपूर रहें,
पर कभी न तुम से दूर रहें ।
अन्तस्तल में शुभ सुमति भरो,
सब पाप-भाव औ कुमति हरो ।।

हों सबल इन्द्रियां तेजस्वी,
मन रहे अडिग पर्वत समान ।
पर रहे सरसता निर्मलता,
मत स्पर्श करें मानापमान ।।

तुम स्मरण रहो सुख में दुःख में,
पल भर को भी न कभी विसरो ।
ऐश्वर्य अमित अक्षुण्ण रहे,
नित भाव भक्ति के सदा भरो ।।

—:०—

'ओम्' नाम का सूर्य उदय होते ही सब पाप-वासनायें विलीन हो गयीं

ऋषिः—आङ्गिरसः कुत्सः । देवता—सूर्यः । छन्दः–त्रिष्टुप् । स्वरः–धैवतः ।।

अद्या देवा उदिता सूर्यस्य निरंहसः पिपृता निरवद्यात् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुःपृथिवी उत द्यौः ।।
ऋ० १।११५।६।।

पदार्थः—

अद्य— आज
सूर्यस्य देवाः–सूर्य की किरणों के समान प्रभु की ज्योति, तथा ज्ञान-रश्मियां,
उदिताः—हमारे हृदयों में उदित हो गयी हैं। उनसे
अवद्यात् अंहसः–निन्दित पापरूपी कर्म
निःनिष्पिपृता–निरन्तर दूर हो रहे हैं ।
तत् मित्रः–उस सच्चे मित्र, तथा
वरुणः—सब से श्रेष्ठ वरणीय प्रभु के गुणों को धारण करके,
नः अद्य–हमारे जीवन आज
मामहन्ताम्–इतने महान् हो रहे हैं, जितने महान्
अदितिः सिन्धुः—अन्तरिक्ष, सागर,
पृथिवी उत द्यौः—पृथ्वी तथा द्युलोक हैं ।।

भावार्थः—चित्त में प्रसुप्त वासनायें तथा निन्दित पापकर्म कैसे दूर होते हैं ? इस का वर्णन इस ऋचा में है।

जिस प्रकार सूर्य देव के गगन-मंडल पर उदय होते ही सब अन्धकार दूर हो जाता है, और प्रकाश ही प्रकाश चहुं ओर फैल जाता है, उसी प्रकार उपासना करते समय उपासक के हृदय में जब सूर्य समान प्रभु के ज्ञान की ज्योति जगती है,तो उस प्रभु के तेज से चित्त में पड़ी हुई जन्म-जन्मान्तरों की वासनायें दग्ध-बीज हो जातीहैं ।

वासनाओं के विलीन होने से सब प्रकार की निन्दित इच्छायें, तृष्णायें तथा पापकर्म नष्ट हो जाते हैं। मन-बुद्धि-चित्त तथा अहंकार-

रूपी अन्तःकरण विशुद्ध होकर, ज्ञान-गंगा से निष्णात हो जाता है। चिदाकाश में प्रभु की महान् ज्योति के उदय होते ही दिव्य गुणों का प्रवेश होने लगता है, और आत्मतत्त्व महानता की ओर अग्रसर होने लगता है। तब सच्चे सखा प्रभु के वरने योग्य उत्तम गुणों को जीवन में धारण कर जीव पृथ्वी अन्तरिक्ष-सागर तथा द्युलोक की सी महानता को प्राप्त करने लगता है।

इस प्रकार प्रभु की उपासना नित्य करनेवाला प्रभुभक्त सब पापों से छूटकर महान् आत्मा बन जाता है।

प्रभु देव ! हमारे हृदयों में भी अपनी सूर्य की ज्योति जगावो, और हमारे छोटे-छोटे जीवनों को महान् बनावो ॥

गीत

उदय हुई है चिदाकाश में,
परम ज्योति वह सूर्य समान।
अंधकार सब मिटा, न कोई,
कोना रहा ग्लानि से म्लान ॥

जगमग-जगमग अन्तस्तल में,
मदहोशी ऐसी छायी।
झिलमिल-झिलमिल ज्योति रश्मि,
वह जा जा कर फिर से आयी ॥

दिव्य तेज के स्पर्शमात्र से,
सकल वासना-पूर बहा।
दग्ध-बीज संस्कार हो गये,
कलुष न मन में तनिक रहा ॥

जीव-पंछी यह मित्र वरुण के,
पंखों पर हो गया सवार।
पृथ्वी द्यौ आकाश सिन्धु सब,
प्रकटे क्षण में लघु आकार ॥

—:o:—

नारी की शोभा कैसी हो?

ऋषिः—राहूगणो गोतमः । देवता—अग्निः । छन्दः—विराट्-त्रिष्टुप् । स्वरः—धैवतः ॥

हिरण्यकेशो रजसो विसारेऽहिर्धुनिर्वात इव ध्रजीमान् ।
शुचिभ्राजा उषसो नवेदा यशस्वतीरपस्युवो न सत्याः ॥

ऋ० १।७९।१॥

पदार्थः—

सत्याः—हे नारी! तू सदा सत्य गुण कर्म स्वभाववाली हो। तथा
न—ऐसी देवी के समान हो, जो
हिरण्यकेशः—स्वर्ण के समान चमकनेवाली हो, जो
उषसः—उषा के समान लालित्यभरी,
नवेदा—अविद्यारूपी अन्धकार को मिटानेवाली, तथा
अहिःधुनिः—गरजते मेघों के समान दुष्ट जनों को कम्पानेवाली हो ।
शुचिभ्राजा—चरित्र की पवित्रता ही जिस की शोभा है ऐसी कान्तिवाली हो । तथा
रजसः—ऐश्वर्य के
विसारे—प्रसार में
वात इव—वायु की भान्ति
ध्रजीमान्—तीव्र गतिवाली हो। तथा
अपस्युवः—अत्यन्त प्रशंसनीय कर्मों के करने में
यशस्वती—यशस्वती हो ॥

भावार्थः—जिस जाति में स्त्रीवर्ग समुन्नत सुशिक्षित है, वह जाति सदा उत्कर्ष को प्राप्त होती है। अतः वेद ने आदेश दिया कि हमारा नारीवर्ग हिरण्य के समान चमकनेवाला हो। स्त्रीजाति मात्र को स्वर्ण से लगाव है। शरीर की कान्ति तथा ओज को स्थिर रखनेवाली सब रसायनों में स्वर्णयुक्त रसायन ही अत्युत्तम मानी जाती है। अतः हमारी स्त्रियां धनरूपी स्वर्ण, तथा शारीरिक ओजरूपी स्वर्ण, दोनों से सदा युक्त रहें। वे गृहस्थ में सुखसाधनरूपी समग्र ऐश्वर्यों के प्रसार करने में वायु के समान तीव्रगति की प्रेरणा करनेवाली हों।

उषावेला की भान्ति, उनकी चारित्र्य-पवित्रता ही मानो उन की चमक हो। मेघों की गर्जना की भान्ति वे अपनी हुंकार से सब दुष्टों को कम्पायमान करनेवाली हों। अविद्यारूपी अन्धकार को दूर करनेवाली वेदज्ञान में पारंगत हों। वे प्रशस्त शुभ कर्म करनेवाली, सदा सत्य में निष्ठ हों। उन के गुण-कर्म-स्वभाव सदा सत्य में रमण करनेवाले हों। उनकी यश कीर्ति का गान चहुं ओर फैलनेवाला हो।

कितना भव्य दर्शन है नारी जाति का! **'मातृमान् पुरुषो वेद'** आदर्श माता का पुत्र ही सच्चा पालन करनेवाला पूर्ण पुरुष वन सकता है।

प्रभु प्रेरणा दें कि इस पवित्र ऋचा से प्रेरणा लेकर हमारी नारियां यशस्विनी वर्चस्विनी सत्यनिष्ठ हिरण्यमयी नारियां बनकर मानव जाति को गौरवान्वित कर सकें॥

गीत

स्वर्ण की आभा संजोये,
ले उषा की लालिमा।
नारियां हर लें अविद्या,
तमस की सब कालिमा॥

वेद के शुभ ज्ञान से,
तप-तेज से सम्पन्न हों।
विमल हो चारित्र्य उनका,
घर सभी के धन्य हों॥

धन-धान्य सुख ऐश्वर्य का,
संदेश दें उनके चरण।
कीर्ति-सौरभ से करें,
अपवित्रता का व हरण॥

मन वचन व्यवहार में वे,
पूत हों औ हों सरल।
दक्ष हों गृहकार्य में वे,
तन अचल मन हो सबल॥

—:o:—

आदर्श नेत्री स्त्री कैसी होती है ?

ऋषिः—राहूगणो गोतमः। देवता—उषाः। छन्दः—विराट् त्रिष्टुप्। स्वरः—धैवतः॥

भास्वंती नेत्री सूनृतानां दिवः स्तवे दुहिता गोतमेभिः।
प्रजावंतो नृवतो अश्वबुध्यानुषो गोअग्राँ उप मासि वाजान्॥
ऋ० १।९२।७॥

पदार्थः—
दिवः—हे स्त्री ! तू सूर्य की
दुहिता उषः—पुत्री उषा के समान तेजस्विनी है। तू
सूनृतानाम्—अच्छे-अच्छे कर्मों तथा उत्तम पदार्थों को
भास्वती—प्रकाशित करनेवाली,
नेत्री—ओजस्वी भाषण करनेवाली नेत्री है। तू
गोतमेभिः—विद्वानों के द्वारा
स्तवे—स्तुति करने योग्या है। तथा तू
प्रजावतः—प्रशंसित प्रजायुक्त, और
नृवतः—अनुगामी नरों से युक्त है। तू
अश्वबुध्यान्—शीघ्र चलनेवाले अश्वों तथा यानों से युक्त, तथा
गो अग्रान्—उत्तम गौओं से युक्त है। और
वाजान्—जीवन के संघर्षों में
उपमासि—विजय प्राप्त करती है॥

भावार्थः—उषा की उपमा देकर श्रेष्ठ आर्य नारी के गुण इस मंत्र में वर्णन किये हैं।

जैसे उषा सूर्य की पुत्री होने से लालिमा से पूर्ण है, इसी भान्ति योग्य माता-पिता की कन्या ही वर्चस्विनी हो सकती है। पुनः ऐसी स्त्री, अच्छे-अच्छे कर्मों के करने में कुशल-हस्त, तथा उत्तम पदार्थों के उपार्जन में निपुण, और अपनी ओजस्विनी वाणी द्वारा कुशल नारियों की नेत्री बन जाती है। उस के गुणों का कीर्तन सब विद्वान् पुरुषों की वाणी द्वारा होने लगता है। ऐसी ख्याति-प्राप्त विदुषी स्त्री उत्तम-उत्तम संतानों को उत्पन्न कर प्रजावती कहलाती है। अपने सौम्य शीतल

उदात्त भावों से उस स्त्री के इंगित पर चलनेवाले नरों तथा सेवकों की कोई कमी नहीं रहती। उस के यातायात के साधनों में अति वेग से चलनेवाले सब प्रकार के यान होते हैं। गोधन पशुधन प्रचरमात्रा में रहते हैं, जिस से उस बलवती स्त्री की इन्द्रियां सदा पुष्ट तथा नियन्त्रित रहती हैं।

जीवन के किसी भी संघर्ष से न घबराकर, उन संघर्षों के समीप आते ही वह अपनी सहन शक्ति से उन पर विजय प्राप्त कर लेती है। धन्य है,वेद-प्रतिपादित ऐसी आदर्श नारी ! स्त्रियों के लिये जीवन जाज्वल्यमान बनाने के लिये कितनी महती प्रेरणा इस सुन्दर मंत्र में है।

प्रभु कृपा करें हमारे देश की नारी उषा की भान्ति भास्वती नेत्री वनकर, ऐसी संतति का निर्माण करें, जो देश का गौरव बन मानवमात्र का कल्याण कर सके ।।

गीत

जाग ! भारत की नारी जाग !!

सूर्य की सी दिव्य दुहिता,
सौम्य ऊषा की किरण।
ओज वाणी में निहित औ,
तेज से ज्योतित नयन ।।

देवगण सब गा रहे,
तेरे गुणों की गीतियां।
हो रहीं अनुकूल तुम्हारी,
सब तरफ शुभ रीतियां ।।

अश्वधन गोधन तुम्हारे,
चरण चुम्बन कर रहे।
उमड़ कर जन-जन तुम्हारी,
झोलियां हैं भर रहे ।।

जाग! भारत की नारी जाग !!

—:०:—

द्वेषातीत वैदिक स्त्री का भव्य दर्शन

ऋषिः—आङ्गिरसः कुत्सः । देवता—उषाः । छन्दः—निचृत्त्रिष्टुप् । स्वरः—धैवतः ।।

यावयद् द्वेषा ऋतपा ऋतेजाः सुम्नावरी सूनृता ईरयन्ती ।
सुमङ्गलीर्बिभ्रती देववीतिमिहाद्योषः श्रेष्ठतमा व्युच्छ ।।
ऋ० १।११३।१२।।

पदार्थ —–
उषा—उषा के समान प्रकाश करनेवाली,
ऋतपा—ऋत, सत्य नियमों की रक्षा करनेवाली,
ऋतेजा—सत्य व्यवहार से तेजयुक्त,
सुम्नावरी—सब सुखों को देनेवाली,
सूनृता—वेदज्ञान से सुसंस्कृत वाणी को
ईरयन्ति—प्रेरणा करनेवाली,
देववीतिम्—विद्वानों की नीति को
बिभ्रतीः—धारण करनेवाली,
श्रेष्ठतमा—अत्यन्त गुण कर्म स्वभाववाली,
या अवयद् द्वेषा—जिसने सब द्वेषों को दूर कर दिया है, वह
वैदिक विदुषी नारी,
अद्य इह—आज ही इस घर में से
व्युच्छ—सब दुःखों को दूर कर दे ।।

भावार्थः—उषा की उपमा देकर, विदुषी नारी का इस ऋचा में सुन्दर चित्रण किया है ।

जिस प्रकार उषा के निकलते ही, सब प्रकार का रात्री का अन्धकार दूर हो जाता है, और चहुं ओर विमल प्रकाश फैल जाता है इसी प्रकार वेद की प्रशस्त नारी के आगमन से गृहस्थ में सब प्रकरा, का अज्ञान अन्धकार दूर होकर, सब दुःख दूर हो जाते हैं, और सुखों का प्रसार हो जाता है ।

ऐसी विदुषी नारी सार्वभौमिक नियमों (*universal laws of*

nature) की रक्षा-करनेवाली होती है। तथा सत्य-व्यवहार के तेज से तेजस्विनी, सब प्रकार के सुखों को देनेवाली, वेदज्ञान में पारंगता, वेदवाणियों की प्रेरणा करनेवाली होती है। सब प्रकार से मङ्गल करनेवाली, देवताओं कीसी नीति को जीवन में धारण करती हुई, अत्युत्तम गुण-कर्म-स्वभाव युक्त सदा रहती है।

उसी आदर्श नारी को कहा है कि तू आज से ही इस जीवन में, सब प्रकार के द्वेषों-दुःखों को दूर करके, चहुं ओर से सुखों की वृष्टि कर।

स्वयं वेदज्ञान-स्नातिका बनकर, दूसरों को उभारने की कितनी भव्य प्रेरणा है।

हमारी नारी जाति को इस प्रकार श्रेष्ठतम बनने की प्रभु प्रेरणा देवें॥

गीत

उषा सी सौम्य प्रकाशमान,
होठों पर धर मुस्कान सरल।
तुम सामगान सी गूंज उठो,
बह जाय द्वेष का कटु गरल॥

ओ भारत की गौरव ललाम,
तुम जागृत देवी सी आओ।
कल्याण-कलश कर में धारे,
सब पाप प्रभावों पर छाओ॥

जिस घर में हो तेरा प्रवेश,
उस घर में हो जाये उजास।
मङ्गल वर्षा हो जाये वहां,
फटके न कभी दुःख दर्द पास॥

—:०:—

प्रणय-सरस दाम्पत्य की सुन्दर झांकी

ऋषिः—दीर्घतमसः पुत्रः कक्षीवान् औशिजः । देवता—उषाः । छन्दः—विराट् त्रिष्टुप् । स्वरः—धैवतः ॥

कन्येव तन्वा३ शाशदानाँ एषि देवि देवमियक्षमाणम् ।
सस्मयमाना युवतिः पुरस्तादाविर्वक्षांसि कृणुषे विभाती ॥
ऋ० १।१२३।१०॥

पदार्थः—

युवतिः देवि— हे यौवन अवस्था को प्राप्त, दिव्यगुण युक्त देवी!
कन्येव तन्वा—तुम अपने कन्या के समान कोमल तनु द्वारा,
पुरस्तात् विभाती—अपने सौन्दर्य की आभा को यौवन से दीप्त अंगों के द्वारा प्रकाशित करती हुई,
वक्षांसि—यौवनावस्था के प्रतीक अपने वक्षस्थित पयोधरों को
आविः कृणुषे—प्रकाशित करती हो ।
शाशदानाम्—व्यवहारों में चंचल कुशलता दिखलाती हुई, तथा
संस्मयमाना—मंद-मंद मोहक मुस्कान करती हुई,
इयक्षमाणम्—संग की इच्छा करते हुए आतुर
देवम्—चरित्रवान् पति को
एषि—प्राप्त होती हो ॥

भावार्थः—कुमारावस्था से यौवन में पदार्पण करती हुई विदुषी देवी, अपनें पति को कैसे रिझाती है, इस का सुन्दर वर्णन, उषा की उपमा देकर इस मन्त्र में किया है ।

भोलीभाली कुमारीपन की अवस्था से जब दिव्य गुणयुक्ता देवी यौवनावस्था को प्राप्त करती है, तो उसके स्वभाव में चंचलता, चपलता आ जाती है । वह अपने चंचल हावभाव से, अपने ब्रह्मचर्य से चमकते हुए गठित शरीर को सन्मुख लाती हुई, मंद-मंद मधुर मुस्कान करती हुई अपने यौवनाबस्था के प्रतीक वक्षःस्थल में स्थित पयोधरों के उत्सेध को आविर्भूत करती हुई, कन्या के समान कोमलतनु द्वारा, अपने उस पति को प्राप्त होती है, जो दिव्य गुणों

से युक्त है,तथा अपनी प्रिया पत्नी को प्राप्त करने के लिये प्रेमातुर व संगातुर है । सुखी गृहस्थ के लिये पत्नी कैसी हो, और किस प्रकार पति के साथ व्यवहार करे, इस का सुन्दर वर्णन इस ऋचा में है । पत्नी पूर्णतया स्वस्थ हो । उसका शरीर गठा हुआ हो । उसका मुख-मण्डल अपने रूप से, उषा की लालिमा के समान सदा लालिमा से पूर्ण रहे । शारीरिक बल स्वस्थ वक्षःस्थल में प्रतिबिम्बित हो, और चन्द्रसमान मुख पर मंद मंद मुस्कान सदा अठखेलियां लेती रहे । पग पायल चारु चंचलता से सदा झंकृत रहे, तथा गृहस्थी के सब कार्यों में कुशलता हो । फिर भला कौन ऐसा देव पति है, जो मोहा न जा सके ।

उषा-समान देवी के लिये यह निर्देश है कि इन मोहक गुणों को धारण कर, प्रतीक्षा में बैठे हुए, संग के अत्यन्त इच्छुक, अपने पत्नी-व्रत पति को प्राप्त हो, निज दाम्पत्य को स्वर्गधाम बना लेवे ।

प्रभो! हम सब के दाम्पत्य-जीवनों को स्वर्ग धाम बनाओ!!

गीत

यौवन-प्रदीप्त तव मृदु काया,
लहरा दे छवि की अतुल पूर ।
प्रिय की चिर-पालित मधु अतृप्ति,
हो जाय पलक में सकल दूर ।।

व्यवहार-सरल गृहकार्य-कुशल,
रानी बन तुम घर में विचरो ।
धारण कर दो दो पीन कलश,
प्रिय के दिन भर की ग्लानि हरो ।।

कर दो घर को तुम स्वर्गधाम,
मुस्कान-सुधा क्षण में उडेल ।
कुश-कण्टक मुंह बाये आयें,
अनजाने वे बन जांये खेल ।।

—:o:—

पति-पत्नी का आकर्षण ही गृहस्थ में सुख बरसाता है।

ऋषिः—राहूगणो गोतमः । देवता—अग्निः । छन्दः—निचृत् त्रिष्टुप् । स्वरः—धैवतः ।।

आ ते सुपर्णा अमिनन्तँ एवैः कृष्णो नोनाव वृषभो यदीदम् ।
शिवाभिर्न स्मयमानाभिरागात् पतन्ति मिहः स्तनयन्त्यभ्रा ।।

ऋ० १।७९।२।।

पदार्थः—

अभ्राः—जिस प्रकार से मेघ
स्तनयन्ति—गरजते हैं, तथा
मिहः पतन्ति—वर्षा की बूदें बरसाते है, इसी प्रकार
स्मयमानाभिः शिवाभिः—कल्याण की वर्षा करनेवाली मुस्करा-हटों से गृहिणियां
नः आगात्—हमें प्राप्त हों ।
कृष्णः वृषभः—जैसे आकर्षण करनेवाला सूर्य
एवैः सुपर्णाः—चमकीली किरणों द्वारा
अभिनन्तन्—वर्षा की प्रेरणा करता है,
यदीदम् नोनाव—और शीतल जल बरसाता है, वैसे पति भी आकर्षक गुणोंवाला होकर प्रगाढ़ प्रणय द्वारा सुखों की वृष्टि करे ।।

भावार्थः—गृहस्थ में सदा सुख की वर्षा कैसे होती रहे, इसका रोचक वर्णन इस ऋचा में निहित है ।

प्राकृतिक उपमा देकर यह दर्शाया है कि जैसे मेघ गरजता हुआ प्रसन्न होकर चहुं ओर वर्षा करता है, ऐसे ही विद्वान् पति गृहस्थ में सुख की वर्षा करे । परन्तु वह कब होता है ?

जैसे चमकती हुई किरणों के आकर्षण द्वारा सूर्य मेघ के जल को बरसाने में समर्थ होता है, इसी प्रकार विद्वान् वृषभरूप पति को लुभाने के लिये, पत्नियों का रूप-लावण्य मोहक आधार है । सौन्दर्य के पंखों द्वारा वे आकर्षण का केन्द्र बन जाती हैं, और अपने मृदु स्वभावयुक्त शुभ गुणों से मुखारविंद पर सदा मंद-मंद मुस्कान लिये, विकसित कमल की भान्ति जब अपने ओजपूर्ण वृषभ पतियों को

आकृष्ट करती हैं, तभी अभ्र के समान प्रसन्नता से गरजते हुए पति सुख की अनुपम वर्षा करते हैं।

वर्षा ऋतु में इस प्राकृतिक अभिनय को निहारते हुए हम भी अपने गृहस्थ जीवनों को सुखों की वृष्टि से आप्लावित करते रहें। हमारी देवियां सदा शुभ गुणों की आकर, तथा मुस्कानों से भरपूर, सदा आकर्षण का केन्द्र बनी रहें। तथैव पुरुष भी गुणान्वित होकर इस मनोरम ऋचा से प्रेरणा लेकर, सदा सुख-वृष्टि का अनुभव करते रहें॥

गीत

साँवली वे बदलियां रस पीन,
गरजती औ बरसती सब ओर।
छा गयीं नभ में भरी उल्लास से,
दामिनी की हैं दिखातीं कोर॥

गृहणियां सौभाग्य का भर भाव,
कुहुक से भर दें घरों को नित जहां।
समझ लो तब पंख अपने सब समेट,
स्वर्ग ही आकाश से उतरा वहां॥

हर्ष की उस सृष्टि के पीछे छुपा,
गगनचारी सूर्य का ज्यों हाथ।
पत्नियों के हृदय-मंदिर में सदा,
त्यों पुरुष बस जांय उन के साथ॥

—:o:—

विचित्र संतति का सृजन ही विदुषी नारी का सफल स्त्रीत्व

ऋषिः—आङ्गिरसः कुत्सः । देवता—उषाः । छन्दः—विराट् त्रिष्टुप् । स्वरः—धैवतः ॥

यच्चित्रमप्न उषसो वहन्तीजानाय शशमानाय भद्रम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥

ऋक् १।११३।२०॥

पदार्थः—

उषसः—उषा के समान लालित्यभरी विदुषी नारी,
यत् शशमानाय—जो अपने अति प्रशंसित,
ईजानाय—संग के इच्छुक पति के लिये,
भद्रं चित्रम्—भद्रगुण कर्म स्वभाव वाली विचित्र
अप्नम्—संतान को,
वहन्ती—अपने गर्भ में धारण करती हुई उत्पन्न करती है, वह नारी धन्य है । वह विदुषी स्त्री
मित्रः—अपने संबधियों से मित्रभाव से मिलनेवाली,
वरुणः अदितिः—श्रेष्ठ माता-पिता सास-सासुर की सदा सेवा करनेवाली,
सिंधुः—सागर के समान गहन गंभीर,
पृथिवी द्यौः—पृथिवी के समान सहनशील, तथा द्युलोक के समान प्रकाशवाली,
नः मामहन्ताम्—स्वयं महानता को प्राप्त कर, हमें महान् बनावे ॥

भावार्थः—मातृत्व ही स्त्रीत्व का सुन्दर लक्ष्य तथा सौभाग्य है । इसी का सुन्दर वर्णन इस ऋचा में है ।

स्त्री की उपमा उषा से देकर ऋचा ने दर्शाया कि स्त्रीवर्ग को उषा के समान सौम्य प्रकाशयुक्त विदुषी होना चाहिये । पुनः वही विदुषी स्त्री अत्यन्त प्रशंसायुक्त गुणान्वित पति को प्राप्त कर उस के संग से गर्भ को धारण कर,अत्यन्त सुन्दर तथा भद्र संतान को निज गर्भ में वहन करती है । तथा तपस्या का जीवन व्यतीत करती हुई,

शशि के समान शिशु को संसार में प्रादुर्भूत करती है। यही उसके स्त्रीत्व की सफलता की चरम सीमा है। परिवार तथा समाज के लिये ऐसा अनुपम उपहार देनेवाली उषा के समान स्त्री धन्य है ! वह पूजा के योग्य है, तथा सदा पूजनीया है।

पुनः उस विदुषी के गुण वर्णन करते हैं कि वह अपने जीवन में सगे संबन्धियों, माता-पिता तथा सास-ससुर सब के साथ सौम्य सखा-भाव से व्यवहार करती है, और अपनी सन्तति को इन्ही गुणों से पल्लवित करती हुई स्वयं महानता को प्राप्त होती है। उसका गहन-गंभीर स्वभाव समुद्र के समान अगाध हो जाता है। सहनशीलता में वह पृथिवी के गुण को धारण करती है, तथा ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में वह सदा द्युलोक के समान प्रकाश का विस्तार करती है।

ऐसी उषा के समान नारी धन्य है ! इन्हीं उषा की प्रतीक विदुषी देवियों से संतति के पालन द्वारा प्रजापति का सर्जन का कार्य सदा चलता रहता है। परिवार और समाज गौरवान्वित होते हैं। प्रभो ! संसार भर की नारी जाति को उषा के समान सौम्य तथा प्रकाशवती बनने की प्रेरणा दो ॥

गीत

सूर्य को धारण किये निज गर्भ में,
क्षितिज पर वह मुस्कराती कौन।
लालिमा का रुचिर अवगुंठन लिये,
उदय का संकेत देती मौन ॥

घरों में सौभाग्यशीला नारियां,
त्यों उठायें गर्भ का मधु भार।
दे रहीं संदेश हैं चुप चाप वे,
प्रकट होता है नया संसार ॥

नित नये माधुर्य के उपहार से,
कर रही हैं सृष्टि को वे धन्य।
रमणियां वे पूजनीया क्यों न हों,
महामहिमामयी और अनन्य ॥

—:o:—

उत्तम गृहिणी के रहते घर में सदा दिव्यगुणों का वास होता है

ऋषिः—दीर्घतमसः पुत्रः कक्षीवान् औशिजः । देवता—उषाः । छन्दः—विराट् त्रिष्टुप् । स्वरः—धैवतः ॥

पृथू रथो दक्षिणाया अयोज्यैनं देवासो अमृतासो अस्थुः ।
कृष्णादुदस्थादर्या३ विहाया‌श्चिकित्सन्ती मानुषाय क्षयाय ॥
ऋ० १।१२३।१॥

पदार्थः—

मानुषाय क्षयाय—मनुष्य के घर के लिये, जब पति नें
अर्या—गृहस्वामिनी पत्नी को
अयोजि—संयुक्त किया हो, जोकि
कृष्णात् उदस्थात्—उषा के समान अंधकार को दूर करनेवाली,
चिकित्सन्ती—तथा रोगों को दूर करनेवाली हो,
विहाया—अति उत्तम गुणोंवाली हो
एनम्—इसी प्रकार उत्तम गुणयुक्त पति को पत्नी नें वरा हो, तो
अमृतासः—अमृत स्वरूप,
देवासः—सब दिव्य गुण,
आ अस्थुः—सब ओर से उस घर में स्थित हो जाते हैं। तथा
दक्षिणाया पृथू रथः—उन का महान् रथ, ऐश्वर्य की दक्षिण दिशा पर गतिमान् हो जाता है ॥

भावार्थः—उषाकाल की उपमा देकर सुन्दर गृहिणी का इस मंत्र में वर्णन है। किस गृहस्थ मनुष्य के घर में दिव्य गुणों तथा अमृत स्वर्ग का सदा वास रहता है ?

जब पति ऐसी उषा के समान शान्त स्वभाववाली पत्नी को गृह-स्वामिनी बनाता है, जो कि सम्पूर्ण शुभ गुणों से प्रशंसित हो, जो अपनी बुद्धिमत्ता से गृहस्थ जीवन की समस्याओं को सुलझानेवाली, तथा रोगों को दूर करनेवाली हो। जो अविद्यान्धकार से ऊपर इस प्रकार उठी हो, जैसे अंधेरी रात में से सौम्य प्रकाश लिये उषा की वेला निकलती है। इस प्रकार की कोमल स्वभाववाली, शान्त एवं ज्ञान की वारिधिरूपी गृहिणी जिस घर में हो, तथा ऐसे ही

चन्द्रसमान शीतल स्वभाववाले, तथा सूर्य के समान प्रकाश तेजवाले पति को जिस पत्नी ने वरा हो, उनका दाम्पत्य जीवन का रथ पूरी आन बान से दक्षिण दिशा पर चलने लगता है।

दक्षिण दिशा का अधिपति ऐश्वर्य का देवता इन्द्र है—"दक्षिणा दिगिन्द्रो अधिपतिः"। अतः वह गृहस्थ-रथ सदा ऐश्वर्य-पथ पर चलता है। उसी देदीप्यमान पति-पत्नी के घर में अमृतरस छलकानेवाले देवता=विद्वान् रमण करते हैं। उन्हीं विद्वानों के संग से स्थायी दिव्यगुण गृहस्थों के घरों में सदा विद्यमान रहते हैं। इन परिवारों में दैवी सम्पद् सदा स्थिर रहती है।

प्रभु देव! हमें भी ऐसे आदर्श पति-पत्नी बनाओ, जिस से दिव्य गुणों का हमारे घरों में सदा वास रहे॥

गीत

सौम्य स्वभाव लिये पत्नी जब,
मधु की नित वर्षा करती।
समाधान कष्टों का करके,
घर की सब पीड़ा हरती॥

और पुरुष भी दिव्य गुणों से,
जब सहयोगी बन जाता।
अचिर शान्ति-सद्भाव-विभव तब,
उस घर में है सरसाता॥

सौमनस्य उस घर में रहता,
भर जाता है नव प्रकाश।
भर जाती है चहक वहां पर,
भर जाता है मधुर हास॥

—:०:—

पुरुषार्थी पुरुष सब पवित्र पदार्थों का उपभोग करते हैं

ऋषिः—मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः। देवता—इन्द्रः। छन्दः—निचृद् गायत्री। स्वरः—षड्जः॥

सुतपाव्ने सुता इमे शुचयो यन्ति वीतये।
सोमासो दध्याशिरः॥ ऋ० १।५।५॥

पदार्थः—

इमे शुचयः—यह सब पवित्र पदार्थ,
सोमासः—जो व्यवहारों को सफल करनेवाले हैं,
दध्याशिरः—जो नाशवान् परन्तु पुष्टि करनेवाले हैं,
सुताः—भगवान् ने उत्पन्न किये हैं।
सुतपाव्ने—जो मनुष्य अपने पुरुषार्थ द्वारा, इन उत्पन्न किये हुए पदार्थों की पालना करता है, उसी के
वीतये—ज्ञान तथा उपभोग के लिये
यन्ति—यह पदार्थ उसे प्राप्त हो जाते हैं॥

भावार्थः—भगवान् ने जीव के भोग के लिये उत्तम से उत्तम पदार्थ रच दिये है। ये पदार्थ अन्न वनस्पति आदि यद्यपि नश्वर हैं, परन्तु जीव को पुष्टि देनेवाले हैं,तथा शुभ कर्मों के लिये समर्थ बनानेवाले हैं। जिससे जीव अपने पुरुषार्थ तथा ज्ञान द्वारा उत्तम व्यवहारों को करता हुआ सुखों का भोग कर सके।

इस मंत्र में पुरुषार्थ तथा शुभकर्म की दो भावनायें मुख्य हैं। ईश्वर नानाविध पदार्थों को रचकर, सूर्य तथा वायु द्वारा इनको पवित्र रखता है। इसी प्रकार मानवमात्र को संसार में हिंसा तथा विनाश की भावना को त्याग कर, रक्षा तथा पवित्रता की भावना को अङ्गीकार करके, सकल पदार्थों का अपने कर्मानुसार यथावत् स्वयं उपभोग करके दूसरों को कराना चाहिये। इसी वेद प्रतिपादित मार्ग पर चल कर संसार में सुख तथा शान्ति का साम्राज्य हो सकता है।

गीत

सृष्टि में सुख-भोग प्रभु ने,
रचे विविध प्रकार ।
मनुज निज पुरुषार्थ से उन,
को करे साकार ॥

और फिर बल पुष्टि लेकर,
करे पर उपकार ।
है वही प्रतिदान प्रभु का,
है वही आभार ॥

—:o:—

साहसी व्यक्ति ही निर्विघ्न सुख प्राप्त करते हैं

ऋषिः—गौतमो नोधा । देवता—अग्निः । छन्दः—विराड् त्रिष्टुप् । स्वरः—धैवतः ॥

अच्छिद्रा सूनो सहसो नो अद्य स्तोतृभ्यो मित्रमहः शर्म यच्छ।
अग्ने गृणन्तमंहस उरुष्योर्जो नपात्पूर्भिरायसीभिः ॥

ऋ० १।५८।८॥

पदार्थः—

सहसः सूनो—साहस के पुत्र, अर्थात् मूर्तिमान् साहसी व्यक्ति,
मित्रमहः—मित्रधर्म को निभानेवाले,
नपात्—हीन भाव से सर्वथा रहित,
अग्ने—अग्नि के समान प्रदीप्त हे विद्वान् जन !
अद्य नः अंहसः—सब प्रकार के पापों से हमारी सदा रक्षा कर।
स्तोतृभ्यः—और आत्मवित् ब्रह्मज्ञानियों से
अच्छिद्रा शर्म यच्छ—निर्विघ्न सुख हमें प्राप्त करा।
गृणन्तम्—मुझ स्तुति करनेहारे को
पूर्भिः आयसीभिः—पुष्टि करनेवाली, स्वर्ण रत्नादि बहुमूल्य धातुओं से शक्ति व ओज प्रदान करें,तथा दुःखों से दूर रखें ।।

भावार्थः—जीवन में शाश्वत उत्तम सुख कैसे प्राप्त होता है, इसी का सुन्दर वर्णन इस ऋचा में है ।

जो जीव साहस के मानों पुत्र हैं,जिनमें शारीरिक मानसिक तथा आत्मिक बल हैं, और जो विद्या तथा धन के स्वामी हैं, उनमें नैसर्गिक साहस आ जाता है। उसी साहस के द्वारा जो जीवन के संघर्षों में जुट जाते हैं,महान् मित्रभावना, तथा न दबनेवाला अग्नि के समान तेज जिनमें रहता है, वे विद्वान् योगीजन ज्ञान-गमन और प्राप्ति द्वारा उत्तम सुखों को स्वयं प्राप्त करते हैं, तथा दूसरों को ठीक मार्ग पर ले चलते हैं ।

उन्हीं से प्रार्थना प्रेरणा है कि वे आज ही, इसी समय हमारे सब दुर्व्यसनों-पापों से हमारी रक्षा करें, और स्तुति करनेवालों को छिद्ररहित, सदा रहनेवाला सुख प्रदान करें। तथा लोह

स्वर्ण मुक्तादि नव रत्नों से बनो उत्तम रसायन के प्रयोग से सब को शक्ति तथा ओज प्रदान करें, और सब रोगों तथा दुःखों से उन्हें दूर रखें।

जोवन में स्थिर रहनेवाला, उत्तम सुख लेना हो, तो प्रथम अपने शारीरिक स्वास्थ्य तथा बल को प्राप्त करना चाहिये। आयस शब्द से आयुर्वेद द्वारा बताई विधि से किसी योग्य वैद्य द्वारा निर्मित, लोह स्वर्ण भस्म तथा नवरत्न पिष्टि आदि रसायन का सेवन करना चाहिये। आयुर्वेद में सत्य ही लिखा है कि:—"रसायनं हि तत्प्रोक्तं यत् जराव्याधिविनाशनम्" अर्थात् 'रसायन' उसे कहते हैं, जो जरावस्था तथा बीमारी को नाश करनेवाली है।

शारीरिक बल प्राप्त कर फिर ज्ञान तथा धन का उपार्जन किया जाय। इन सब के मिश्रण से जो आत्मविश्वास मनुष्य में आ जाता है, उस साहस से जीवन में जुट जावे। किसी भी अच्छे अवसर को हाथ से न जाने देवे। विद्वानों तथा गुणीजनों का सत्संग करते हुए, बुराइयों से दूर रहता हुआ जन, फिर सदा रहनेवाले सुख की उपलब्धि सहज ही कर लेता है।

प्रभुदेव ! हम सब को इस साहस बल का वरदान दो ताकि हम भी छिद्ररहित सुखों की उपभोग कर सकें !!

गीत

साहस के ओ वरद पुत्र,
औ वैरी निर्बलता के।
शक्ति फूंक दो जन-मन में,
भय हीनभाव सब भागे ॥

स्वर्ण रत्न मुक्तादि धातु का,
करें सदा हम सेवन।
सुख अबाध भोगें जीवन में,
रहे सबल यह तन मन ॥

—:०:—

सूर्य तथा उषा के समान अपनी संतति में ज्ञान का प्रकाश धारण कराओ

ऋषिः—पराशरः शाक्त्यः। देवता—अग्निः। छन्दः—निचृत् त्रिष्टुप्। स्वरः—धैवतः ॥

महे यत् पित्र ईं रसं दिवे करव त्सरत् पृशन्यश्चिकित्वान्।
सृजदस्ता धृषता दिद्युमस्मै स्वायां देवो दुहितरि त्विषिं धात्॥
ऋ० १।७१।५॥

पदार्थः—

यः चिकित्वान्—जो प्रकाशस्वरूप,
कः देवः—सुख देनेवाला सूर्य देव,
महे पित्रे दिवे—महान्, पालना करनेवाले प्रकाश को फैलाने के लिये,
अस्ता—अपनी किरणों को छोडनेवाला,
पृशन्यः—जिस प्रकार भूमि को स्पर्श करता है, तथा
ईम् सरत्—अंधकार को दूर करता है, और
रसम् अवसृजत्—अन्न-ओषधियों में रसों को भरता है, तथा
स्वायां दुहितरि—अपनी पुत्री के समान उषा में
त्विषिं धात्—प्रकाश तथा तेज को भरता है, और उसमें
दिद्युम् धृषता—ज्योति को दृढ़ करता है, इसी प्रकार माता-पिता अपने पुत्र-पुत्रियों को अपने ज्ञानप्रकाश के स्पर्श से मेधावी वर्चस्वी तेजस्वी बनावें ॥

भावार्थः—सूर्य तथा उषा की उपमा देकर इस मंत्र में माता-पिता को प्रेरणा दी गयी है कि वे अपनी संतानों में ज्ञान के शुभ संस्कार भरें। जैसे सूर्य स्वयंप्रकाश तथा तेज का पुंज है, इसी प्रकार पिता को प्रथम स्वयं ज्ञानवान् होना चाहिये। जिस प्रकार सूर्य अंधकार को दूर करने तथा प्रकाश को फैलाने के लिए अपनी किरणों को छोडता है, और अन्न वनस्पतियों को स्पर्श करता हुआ उनमें जीवन-दायिनी शक्ति भर कर संसार में सुख देता है, इसी प्रकार पिता अपने ज्ञान के उपदेशों से अपनी संतति के मस्तिष्क को स्पर्श करता हुआ, उनकी बुद्धियों को पवित्र करे, और उन के शारीरिक तथा मानसिक बल को बढाता हुआ उनके जीवन में सुख का संचार करे।

जैसे सूर्य अपनी पुत्रीरूपी उषा को अपने प्रकाश से उज्ज्वल करके उसमें ज्योति का दृढ रखता है, इसी प्रकार माता-पिता अपने व्यावहारिक तथा वैदिक ज्ञान के प्रकाश से अपनी संतति के अन्तः-करण को प्रकाशित करके दिव्यगुणों की ज्योति उनके गुण कर्म स्वभाव में दृढ कर देवें, ताकि उस ज्योति के प्रकाश में सब प्रकार के कुसंस्कारों तथा बुरी आदतों से वे बचे रहें, और जीवन में सफलता प्राप्त करके सुखी बने रहें।

आजकल के सामाजिक वातावरण में यह वैदिक आदेश कितना महत्त्वपूर्ण है !! युवा पीढ़ी बड़े वेग से अपनी संस्कृति तथा मौलिक नैतिक आध्यात्मिक सिद्धान्तों से दूर भाग रही है। शिक्षाप्रणाली बिगड़ी होने के कारण शिक्षासंस्थानों में युवक-युवतियों को सन्मार्ग-दर्शन मिलता नहीं। इस अवस्था में माता-पिता के ऊपर ही भारी उत्तरदायित्व आ जाता है।

प्रतिदिन प्रातःकाल उषा और सूर्य का दृश्य देखकर अपनी संतानों को अपना स्पर्श तथा प्रकाश देने का कितना अनुपम प्रोत्साहन मिलता है !! प्रभु प्रेरणा करें कि पितृवर्ग जागें, और संततिवर्ग को सत्प्रेरणा दे सकें॥

गीत

लेकर कलश ज्योति का स्वर्णिम,
प्राची में दिनकर आया।
खिलीं वनस्पतियां, किरणों की,
छायी पल-भर में माया॥

और हँस रही उषा सजीली,
पिता सूर्य से लेकर ज्ञान।
फैलाती निज छटा निराली,
कितना है, उस को अभिमान॥

इसी भांति संतति को भर दे,
ज्ञानामृत से पिता सभी।
जीवन को कर सकें सफल वे,
पथ पर भटकें नहीं कभी॥

—०—

सुखनाशक अन्धकार को हटाकर ज्ञान की ज्योति जगाओ

ऋषिः—राहूगणो गोतमः । देवताः—मरुतः । छन्दः—निचृद् गायत्री । स्वरः—षड्जः ।।

गूहता गुह्यं तमो वि यात विश्वमत्रिणम् ।
ज्योतिष्कर्त्ता यदुश्मसि ।। ऋ० १।८६।१०।।

पदार्थः—

विश्वम्—हे मानव ! सब प्रकार के
अत्रिणम्—सुखों को नाश करनेवाले,
तमः—अविद्यारूपी अन्धकार को
वियात—दूर हटा दो । और—
यत् उश्मसि—सुखों को देनेवाले जिस ज्ञान की तुम इच्छा करते हो,
ज्योतिः कर्त्त—उस ज्योति को जीवन में जगा लो ।
गुह्यम् - इस प्रकार ज्ञान का गूढ़ तत्त्व जो तुम्हें प्राप्त हो जाय,
गूहता -उस की सब प्रकार से रक्षा करो ।।

भावार्थः—प्रत्येक मनुष्य जीवन में सुख चाहता है, दुःख नहीं । वह किस तत्त्व से मिलता है,इस का सुन्दर वर्णन इस ऋचा में है ।

सब से पूर्व मानव यह जानने का प्रयत्न करे कि सुखों को हरनें-वाली क्या वस्तु है ? ऋचा ने बताया कि वह तम है, अविद्यारूपी अंधकार है, जो सुखरूपी प्रकाश को अपने आंचल में छिपा लेता है । सब से प्रथम मनुष्य उस अविद्यान्धकार को दूर करे ।

पुनः मानव के अन्तस्तल में विराजमान जो ज्ञान की ज्योति है, जिसे वह सदा चाहता है, उसे तप स्वाध्याय ईश्वरप्रणिधान आदि साधनों से जगा ले । उस दिव्य ज्योति के जगते ही ज्ञान का सूर्य चमक उठेगा, और उन्हीं ज्ञान की रश्मियों में जीवन यापन करता हुआ मानव सदा सुख-समीर के पलने में झूलता रहेगा ।

यही ज्ञान का तत्त्व गुह्य तत्त्व है,जिसे एक बार प्राप्त करके,यत्न से अपने मन बुद्धि चित्त अहंकाररूपी अन्तःपटल में सदा सुरक्षित रखना चाहिये ।

प्रभूदेव! कृपा करो। जन्म-जन्मान्तरों के अविद्याजन्य संस्कारों को दूर करो, और ज्ञान की ज्योति हमारे हृदय-मन्दिरों में सदा प्रज्वलित रखो!!

गीत

ज्ञान-ज्योति ही जीवन के सुख का रहस्य है,
और सभी दुःख क्लेशों की जड़ अंधकार।
छा जाता, पथभ्रष्ट तभी मानव होता है,
घिर जाता उलझन में वह नाना प्रकार॥

हे मेरे प्रभु! जीवन में वह भर दो विवेक,
हों न कभी पथ-भ्रष्ट रहें, हम सदा सरल।
वह ज्ञान-ज्योति की ज्वाला नित जगती रहे,
सन्मार्ग त्याग कर कभी न हों हम उच्छृंखल॥

—:o:—

विद्वान् प्रशासक के गुण

ऋषिः—राहूगणो गोतमः। देवताः—मरुतः। छन्दः—जगती। स्वरः—निषादः।।

स हि स्वसृत्पृषदश्वो युवा गणोऽ३ऽया ईशानस्तविषीभिरावृतः।
असि सत्य ऋणयावानेद्योऽस्या धियः प्राविताथा वृषा गणः।।
ऋक् १।८७।४।।

पदार्थः—
स हि—विद्वान् प्रशासक वह है जो,
युवा—शारीरिक तथा मानसिक बल से सदा युवा हो। और
गणः—गुणीजनों की गणना में सहसा जिसकी ओर उंगली उठे।
पृषत् अश्वः—जिसकी गति मेघों के समान शीघ्रगामी हो।
अयः ईशान—जो शासन करने में कुशल हो। तथा जो
स्वसृत्—अपने अनुयाइयों को आसानी से मिलने योग्य हो।
तविषीभिः—जिसे सब प्रकार की शक्तियां चहुँ ओर से उपलब्ध हों।
सत्यः असि—जो सत्यस्वरूप है।
ऋणयावा—जो हर प्रकार का ऋण चुका देनेवाला है। तथा
अनेद्यः—प्रशंसनीय है।
अस्या धियः—जो बुद्धि द्वारा सब कर्मों की
प्राविता—रक्षा करनेवाला होता है। तथा
अथ वृषागणः—जो शीतल पवनों के समान सुखसमीर सरसानेवाला होता हैं।।

भावार्थः—मरुत् समान मानव किन गुणों को धारण करे, इसी भाव का सुन्दर दिग्दर्शन इस ऋचा में है।

वह विद्वान् नेता अपने स्वजनों को शीघ्र मिल सकता हो, मिलनसार हो। उसकी गति तीव्र हो, मानो उस के अश्व मेघों के समान द्रुतगति से उठनेवाले हों। वह यौवन शक्ति से भरपूर हो। तथा पवनों के समान वेग व बल से युक्त हो। जो सामर्थ्यवान्, अच्छा शासन करनें के योग्य हो।

उसका स्वभाव सत्यस्वरूप हो। मन वचन कर्म से वह सत्यनिष्ठ हो। किसी तरह की सेवा लेकर वह तत्काल उऋण होने की चिन्ता करे। कृतज्ञ हो, कृतघ्न न हो। उसकी प्रशंसा सब दिशाओं में हो। वह अपनी बुद्धि द्वारा किये गये कर्मों की रक्षा करनेवाला हो। अपने सुमधुर स्वभाव तथा मृदुवाणी से सौरभ की वृष्टि करनेवाला हो। मधुरभाषी तथा परोपकारी हो। तथा श्रेष्ठजनों की गणना में सब से पहिले उसी की गणना हो। कितना भव्य दर्शन है, मानव उत्थान का !!

गीत

सच्चा शासक वही एक है किसी देश का,
जिसमें हो सामर्थ्य और हो सद्विवेक।
सत्यधर्म पर सदा रहे आरूढ़ अचंचल,
शुचिता हो जिसके जीवन की सदा टेक॥

गुण-महिमा जिस की गुणियों में हो अपरिमेय,
दिव्यगुणों की श्री जिसमें विकसित रहे।
जिसके अनुगामी रहें सुखी आश्वस्त सदा,
प्रजा न जिसकी पलभर को संत्रस्त रहे॥

—:०:—

पुत्रों को पितावत् बनाकर जरावस्था सुख से भोगो

ऋषिः—राहूगणो गोतमः। देवताः—विश्वेदेवाः। छन्दः—त्रिष्टुप्। स्वरः—धैवत ।।

शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम् ।
पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः ॥
ऋ० १।८९।९।।

पदार्थः—

यत्र—जिस आयु को
अन्ति देवाः—विद्या तथा धन के साधनों से सम्पन्न विद्वान् लोग,
तनूनाम् आजरसम्—शरीरों द्वारा जरावस्था तक,
शतम् शरदः—सौ शरद् ऋतुओं का
चक्र—सुख से उपभोग करते हैं।
यत्र नः मध्या—और जहां हमारे बीच में,
पुत्रासः—पुत्र लोग
इत् नु—समय आने पर निश्चय से,
पितरः भवन्ति—पिता के समान पालक बन जाते हैं,
नः आयुर्गन्तोः—ऐसी अवस्था में हे प्रभो! हमें, उस सुखी दीर्घ आयु की इच्छा करनेवालों को,
मा रीरिषत्—मत नष्ट करो ।।

भावार्थः—मानव चोला सब से श्रेष्ठ माना जाता है। इसे प्राप्त कर प्रत्येक नर-नारी को पूर्ण शत वर्ष की आयु सुखपूर्वक व्यतीत करनी चाहिये। प्रायः वृद्धावस्था के आगमन के साथ ही, मानव चोला दुःखों तथा व्याधियों से डोल उठता है। इसी जरावस्था में सुखी रहने का रहस्य इस ऋचा ने बताया है।

पहिले मंत्रभाग में बताया है कि मनुष्य जरावस्था तक सौ शरद् ऋतुओं का उपभोग स्वस्थ शरीरों द्वारा करे। यह वही कर सकता है, जो शरीर को नीरोग तथा बलवान रखने के साधनों से सम्पन्न हो। इन साधनों को प्राप्त करने के लिये मनुष्य धन का उपार्जन

करे। पुनः कुशल वैद्यों की संगति द्वारा शरीर को नीरोग तथा बलवान् रखने का ज्ञान प्राप्त करे, और तदनुकूल आचरण करके जरावस्था को सुखी बनाये रखे।

दूसरी रहस्य की बात यह कही है कि जरावस्था के आगमन के साथ ही अपने पुत्रों को सारा कार्यभार संभलवा कर उन्हें पितर बना लेवे। सारी सत्ता स्वयं अपने ही हाथ में न बनाये रखे। उस परिवर्तित अवस्था में जिन पुत्रों को पिता ने सारी आयु पाला पोसा था, वही पुत्र अब पितर बन कर सेवा सुश्रूषा में कोई कसर उठा न रखेंगे।

प्रभुदेव ! आशीर्वाद दो कि हम भी अपनी जरावस्था तक स्वस्थ रहते हुए पूरे शत वर्ष का उपभोग करें, और "जीवेम शरदः शतम्" इस वेदवाक्य को सफल कर सकें॥

गीत

वहता जाये नित जीवन का समरस प्रवाह,
कभी न मिथ्या मोह उसे प्रति हत करे।
पुत्र बनें जब पिता, और उत्तरदायी हों,
पिता उन्हें दे भार स्वयं को विरत करे॥

परिवारों में सुखशान्ति रहे, हों कलह-हीन,
हे मेरे प्रभु ! दृष्टि हमारी निर्मल हो।
निर्बाध साधना चले उच्च जीवन की नित,
परहित में हो हर्ष, वही शुभ संबल हो॥

शत शरद् ऋतु तक स्वस्थ सदा शारीरिक बल हो,
बुद्धि प्रखर मन निर्मल चित्त सदा हो पुलकित।
देवों का सा सरस सरल हर्षित जीवन हो,
मुस्कानभरे नयनों से हो हृदय प्रफुल्लित॥

—:o:—

सत्यनिष्ठ व्यक्ति की जीवन-मधुरता का झूला

ऋषिः—राहूगणो गोतमः। देवताः—विश्वेदेवाः। छन्दः—निचृद् गायत्री। स्वरः—गान्धारः॥

मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः।
माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः॥ ऋ० १।९०।६॥

पदार्थः—
ऋतायते—सृष्टिनियमों के अनुसार सत्य का व्यवहार चाहनेवाले पुरुष के लिये,
वाताः—पवन के झोंके
मधु—शहद-घुले होते हैं।
सिन्धवः—नदियां तथा समुद्र उस के लिये,
मधु क्षरन्ति—मधुरता के गीत सुनाते हैं।
ओषधीः—सकल खाद्य पदार्थ तथा ओषधियां,
नः—हमारे लिये
माध्वीः सन्तु—जीवनप्रद मिठास से भरे हों॥

भावार्थः—जीवन में सब को मधुरता की इच्छा है, कटुता को नहीं। सो जीवन मधुमय कैसे हो? ऋचा बताती है कि उस विद्वान् ज्ञानवान् का वातावरण मधु बरसाता है, जिस का व्यवहार सत्य को धारण किये हुए है। जो सृष्टि-नियमों के अनुसार जीवन में प्रत्येक पग उठाता है, उसे पवन भी मधुरिमा का पंखा झुलाता है। नदियों तथा समुद्र की कल-कल करती कल्लोलें उस के लिये मधुरता के संगीत सुनाती हैं।

सत्य संकल्प के कारण हम भी अब प्रभु से प्रार्थना करने के अधिकारी हैं कि सकल खाद्य पदार्थ हमारे लिये जीवन-प्रद मिठास से भरे हों॥

गीत

जहां सत्य-संकल्प उदय हो,
औ जीवन हो जहां सरल।
पवन वहां मधु बरसाता है,
हो जाता है मन निर्मल॥

वहीं सतत सागर नदिया भी,
मधु प्रवाह सी बहती हैं।
कानों में कल-कल ध्वनि से वे,
मधुर-मधुर कुछ कहती हैं।।

सत्यव्रती हों हे प्रभु ! हम भी,
मन में कभी न छल लायें।
भोजन-पान सुपुष्टि भरें सब,
औ मधु हम पर बरसायें।।

—:०:—

पृथ्वी का कण-कण सत्यवादी के लिये दिन-रात मधु बरसाता है

ऋषिः—राहूगणो गोतमः। देवताः—विश्वेदेवाः। छन्दः—गायत्री। स्वरः—गान्धारः ॥

मधु नक्तमुतोषसो मधुमत् पार्थिवं रजः।
मधु द्यौरस्तु नः पिता ॥ ऋ० १।९०।७॥

पदार्थः—

नक्तमुतोषसः—सत्यनिष्ठ विद्वान् के लिये रात्रि तथा उषाकाल
मधु—मधुर होते हैं।
पार्थिवं रजः—उसके लिये पृथ्वी का कण-कण
मधु—मिठास से भरा होता है। सच्चे ज्ञानी प्रार्थना करते हैं कि—
मधु द्यौः—मधु बरसाता हुआ द्युलोक
नः पिता—हमारे लिये पिता के समान पालना करनेवाला हो ॥

भावार्थः—सत्य का आचरण करनेवाले के लिये रात्रि की विश्राम की घड़ियां मिठास तथा उल्लास से भरी होती हैं। उषा काल की लालिमा मधुरिमा का संदेश लिये उदित होती है।

पृथ्वी का कण-कण उसके लिये मधुर बन जाता है। ऐसे सच्चे प्रभुभक्त प्रार्थना करते हैं कि सूर्य आदि को धारण करनेवाला द्युलोक, मधु बरसाता हुआ हमारे लिये पिता के समान पालना करनेंवाला हो।

इस प्रकार सच्चे पुरुष के लिये दिन रात प्रति पल मधुरता की वर्षा होती रहती है ॥

गीत

सत्यव्रती के लिये निरंतर,
रात मधुर है प्रातः मधुर।
कण-कण पृथ्वी का मधुमय है,
जीवन की है हर बात मधुर ॥

सत्यव्रती हों हे प्रभु ! हम भी,
मन में कभी न छल लायें।
सूर्य चन्द्र और तारागण ये,
सुधा मधुर नित बरसायें ॥

—:o:—

वनस्पति सूर्य तथा गोशक्ति सदा मधु बरसावें

ऋषिः—राहूगणो गोतमः । देवताः—विश्वेदेवाः । छन्दः—पिपीलिकामध्या निचृद् गायत्री । स्वरः—गान्धारः ॥

मधु॑मान्नो॒ वन॒स्पति॒र्मधु॑माँ अस्तु॒ सूर्यः॑ ।
माध्वी॒र्गावो॑ भवन्तु नः ॥ ऋ० १।६०।८॥

पदार्थः—

नः वनस्पतिः—हमारी वनस्पतियां, तथा वनों में स्थित वृक्ष
मधुमान् —मधु बरसाने वाले हों ।
सूर्यः—सौर मण्डल में स्थित सूर्य, तथा शरीर में स्थित प्राण
मधुमान्—मधुमान हों ।
माध्वीः—मधुर गुणोंवालो
नः गावो भवन्तु—हमाये लिये सूर्य-किरणें होवें ॥

भावार्थः—विश्व-मानव का जीवन माधुर्य से भरपूर रहे । उस के लिये वनस्पतियां ओषधियां मधुर गुण लेकर उत्पन्न होती रहें जिस से मानव का अन्नमय कोष बलवान् रहे । वनों में वृक्ष सदा उगते रहें, जिससे वर्षा का कभी अभाव न हो । सौरमण्डल में स्थित सूर्य अपनी आकर्षणशक्ति द्वारा ब्रह्माण्ड को ठीक चलाता रहे, और अपनी किरणों द्वारा जग में मधु बरसाता रहे । तथा शरीरस्थ प्राण भी स्वस्थ रहकर जीवन को सुखदायी बनाये रखें ॥

गीत

पादप और लताएं मनहर,
जीवन में माधुर्य भरें ।
खान-पान फल-मूल हमारे,
तन में शक्ति सुपुष्टि भरें ॥

किरणें सूरज की बन जायें,
बलदायक औ तेज-निधान ।
भरें मधुरिमा कण-कण में वे,
जीवन का बन कर वरदान ॥

—:०:—

सत्कार के योग्य सुख-प्रद स्वराज्य का स्थापना करो

ऋषिः—राहूगणो गोतमः । देवता—इन्द्रः । छन्दः—विराट् पङ्क्तिः स्वरः—पञ्चमः ।।

इन्द्रो वृत्रस्य तविषीं निरहन्त्सहसा सहः ।
महत्तदस्य पौंस्यं वृत्रं जघन्वाँ असृजदर्चन्ननु स्वराज्यम् ।।

ऋ० १।८०।१०।।

पदार्थः—

इन्द्रः—सूर्य के समान तेजस्वी राष्ट्र-अध्यक्ष, अपने
सहसा सहः—सहज साहस, तथा
महत्तदस्य पौंस्यम्—अपने महान् पुरुषार्थरूपी बल से,
वृत्रम्—मेघसमान विघ्नों तथा शत्रुओं को
जघन्वान्—मार देता है ।
अर्चन् अनु—तथा सब प्रजा के अनुकूल, सत्कारयोग्य,
स्वराज्यम्—सुराज्य की स्थापना कर देता है,
वृत्रस्य तविषीम्—जिस प्रकार सूर्य मेघों की शक्ति को
निरहन्—निरन्तर हनन करता हुआ, जलरूपी सुखों की वर्षा करता है ।।

भावार्थः—इस ऋचा में सुराज्य स्थापन करने की उत्कृष्ट प्रेरणा है । ऐसा सुराज्य, जिस को सब सत्कार की दृष्टि से देखें, और जो सारी प्रजा के अनुकूल बन सब को सुख देनेवाला हो ।

ऐसे सुराज्य की स्थापना के लिये सूर्य की उपमा देकर दर्शाया है कि जैसे सूर्य अपने सहज-साहस, तथा किरणों के बल से मेघों का हनन करके सुख की जल-वृष्टि करता है, वैसे ही राष्ट्र का नेता अपने सहज पराक्रम से सब विघ्न-बाधाओं तथा शत्रुओं को नष्ट करके सुख-प्रद स्वराज्य की स्थापना करता है ।।

गीत

वह देखो सब मेघ छँट गये,
क्षितिज-छोर से पलभर में ।
सूर्य उगा है किरण-जाल का,
चक्र सुदर्शन ले कर में ।।

ऐसे ही शासक नेता हों,
भ्रूविक्षेप जिधर कर दें।
सकल विघ्न-वाधा टल जायें,
चरण जिधर अपने धर दें॥

सूर्य समान इन्द्र शासक जब,
सुखद राज्य की नींव धरे।
प्रजासमूह सब प्रमुदित हो,
हर्षित मंगल गान करे॥

—:०:—

उत्तम स्वराज्य में सब ओजस्वी पुरुषार्थी बन सुख भोगते हैं

ऋषिः—राहूगणो गोतमः । देवता—इन्द्रः । छन्दः—पंक्तिः । स्वरः—पञ्चमः ॥

नहि नु यादधीमसीन्द्रं को वीर्या परः । तस्मिन्नृम्णमुत क्रतुं देवा ओजांसि सं दधुरर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ १।८०।१५॥

पदार्थः—

परः—जब उत्तम गुणयुक्त राजा,
स्वराज्यम्—अपने सुराज्य को
अनु अर्चन्—सब के सुखों के अनुकूल चलाता है, तब
देवाः—विद्वान् लोग
नृम्णम् क्रतुम्—उत्तम बुद्धियों को प्राप्त कर पुरुषार्थ द्वारा धनों को प्राप्त करते हैं,
उत् ओजांसि—तथा ओज को
संदधुः—शरीरों में धारण करते हैं ।
इन्द्रम्—ऐसे ऐश्वर्ययुक्त राजा के राज्य में
को न हि नुयात्—कौन ऐसा व्यक्ति है, जो इन सब सुखों को प्राप्त नहीं करता ? तथा
वीर्या—सब प्रकार के वीर्यों को
अदधीमसि—प्राप्त नहीं करता ? ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वैदिक सुराज्य की गरिमा का वर्णन् है । ऐसे पूजा के योग्य सुराज्य में कौन व्यक्ति है, जो शरीर मन तथा आत्मा के पराक्रम को प्राप्त नहीं करता ? कौन है जिस में सब प्रकार के वीर्यों की स्थापना नहीं होती ? और कौन है जो उत्कृष्ट नहीं बन सकता ?

अर्थात् ऐसे सुराज्य में सब प्रजाजनों को समान अधिकाररूप से ऐसी सुविधा तथा साधन मिलते है, जिनसे वे वीर्यवान् होकर ओजस्वी तेजस्वी बनने में समर्थ हो जाते हैं। तथा उस उत्तम सुराज्य में प्रजावर्ग विद्वान् बन कर, बुद्धिपूर्वक कर्म करनेवाले पुरुषार्थी बन जाते हैं । और सब प्रकार के सुखों को प्राप्त कर लेते हैं, तथा सब प्रकार के ओजों को जीवन में धारण कर लेते हैं ।

कितना भव्य दर्शन है, अपने अर्चनीय सुराज्य का । प्रभो! प्रेरणा दो कि समस्त भूमण्डल पर ऐसे सुराज्यों की शासकवर्ग स्थापना करें। और विना किसी भेदभाव के प्रजाजनों को सुखी रखें ।।

गीत

शासक जहां सशक्त सबल हों,
जागरूक शासन करते ।
उस सुराज्य में शत्रु सदा ही,
निज पग धरने में डरते ।।

विपुल संपदा अनायास तब,
लहराती सी आती है ।
सुखी और सम्पन्न प्रजा तब,
फूली नहीं समाती है ।।

चारों ओर गुंजरित होते,
यज्ञ-त्याग के नाद वहां ।
वैदिक संस्कृति का भर जाता,
घर-घर में जयनाद वहां ।।

—:०:—

बलवान् ही रयि धन का भाग लेते हैं

ऋषिः—राहूगणो गोतमः। देवता—सोमः। छन्दः—त्रिष्टुप्। स्वरः—धैवतः॥

देवेन नो मनसा देव सोम रायो भागं सहसावन्नभि युध्य।
मा त्वा तनदीशिषे वीर्यस्योभयेभ्यः प्र चिकित्सा गविष्टौ॥
ऋ० १।९१।२३॥

पदार्थः—

सोम देव—उत्तम पदार्थों को उत्पन्न करनेवाला,
सहसावन्—साहसी सोम पुरुष, जब
देवेन मनसा—अपने दिव्यगुणों से युक्त मन से
अभियुध्य—जीवन के संघर्षों में जुट जाता है, तब वह
रायो भागम् ईशिषे—धन के ऐसे भाग को प्राप्त कर लेता है, जो वास्तविक सुखों को देनेवाला है। तथा
नः—हमें भी सुख पहुंचाता है। ऐसा रयिधन वह तब प्राप्त कर सकता है, जब
उभयेभ्यः—अपने तथा पराये दोनों को
वीर्यस्य प्रचिकित्सा मा—अपने बलसंबंधी आलोचना को अपने मन में नहीं आने देता। अपने बल पर संशयरहित हुआ निष्ठावान् रहता है।
गविष्टौ मा त्वा आतनत्—तथा ऐसी सहज प्रेरणा देता है कि इंद्रियां पीड़ा देनेवाली न हों, अर्थात् संयम में रहें॥

भावार्थः—ऐश्वर्य की सरिता तो संसार में अविरल बहती रहती है, परन्तु इस का भाग किसको मिलता है? इस ऋचा में इस का रहस्य खोला है।

रयि=ऐश्वर्य का भाग सोम प्रभु की कृपा से उसी दिव्य पुरुष को मिलता है, जो अति बलवान् होता है, तथा तथ्य को जाननेवाला

विद्वान् होता है। पुनश्च, ऐसा देव पुरुष मनोयोग से संसार के संघष में जुट जाता है। वह दिव्यगुणों से युक्त होता है, तथा अपने मन को उदात्त भावनाओं से जीवन के कठिन से कठिन कार्य को सफल बनाने में समर्थ हो जाता है। दूसरे चरण में दर्शाया है कि अपने अथवा परायों से संशययुक्त भर्त्सना मिलने पर भी वह धीर पुरुष कभी भी अपने आत्म-विश्वास को नहीं छोड़ता। आत्म-विश्वास की दृढ शिला पर आरूढ वह अपनी इन्द्रियों के संयम-बल से सदा सन्नद्ध कभी पीड़ा को प्राप्त नहीं होता। ऐसा आत्मविश्वासी धीर पुरुष जब अपने दिव्य मन की शक्तियों से संसार में विचरण करता है, तो ऐश्वर्य की देवी उसी बली वीर के गले में सहसा सुख-शान्ति की जयमाला पहिना देती है।

प्रभो ! प्रेरणा दो कि हम भी अपने पुरुषार्थ द्वारा इस रयि को देवी को रिझा सकें।।

गीत

साहस हो संयम, का बल हो,
भरा हृदय में जिसके।
जीवन का ऐश्वर्य भाग्य में,
रहता है बस उसके।।

स्वयं भाग्य-निर्माता बन कर,
जो बढ़ता जीवन में।
भय-संशय का लेश वहां पर,
आता कभी न मन में।।

अमित आत्म-विश्वास प्रेरणा,
भरता वह जन-जन में।
दुर्जन की टीकाएं उसको,
नहीं सालतीं रण में।।

—०—

जीवात्मा सोमी बन सब पर सुख तथा ज्ञान की वर्षा करे

ऋषिः—राहूगणो गोतमः। देवता—सोमः। छन्दः—त्रिष्टुप्। स्वरः—धैवतः॥

त्वं सो॑म॒ क्रतु॑भिः सु॒क्रतु॑र्भू॒स्त्वं दक्षैः॑ सु॒दक्षो॑ वि॒श्ववे॑दाः।
त्वं वृषा॒ वृष॒त्वेभि॑र्महि॒त्वा द्यु॒म्नेभि॑र्द्यु॒म्न्य॑भवो नृ॒चक्षाः॑॥

ऋ० १।९१।२॥

पदार्थः—

त्वं सोम—हे उत्तम रचनात्मक जीवनवाले जीव ! तू,
दक्षैः—ज्ञान-विज्ञान को प्राप्त करके,
विश्ववेदाः—बहुत विद्याओं को जाननेवाला,
सुदक्षः—अति योग्य व्यक्ति बन जा।
त्वं क्रतुभिः—तू ज्ञान द्वारा अच्छे-अच्छे कर्मों को करनेवाला,
सुक्रतुः भूः—अति सुन्दर धार्मिक कार्यों को करनेवाला बन जा।
त्व वृषत्वेभिः—तू परोपकार द्वारा सुखों की वर्षा करनेवाला,
महित्वा वृषा—महान् लोक हितकारी बन जा।
द्युम्नेभिः—अपने तेजस्वी प्रकाश की रश्मियों द्वारा,
द्युम्नः—जनता का प्रकाश-स्तम्भ बन कर,
नृचक्षाः अभवः—नर-नारियों का मानो नेत्र ही बन जा, उन को मार्ग दर्शानेवाला नेता बन जा॥

भावार्थः—मानव का चोला धारण कर जीव को किस प्रकार उन्नति के शिखर पर पहुंचना है,इस की प्रेरणा इस मन्त्र में है।

सब से प्रथम ज्ञान का उपार्जन करना है। पृथ्वी से लेकर सूर्य-पर्यन्त सब पदार्थों का यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर जीव सब से अग्रणी विद्वान् बने।

पुनः उसी ज्ञान के प्रकाश से उत्तम से उत्तम कार्यों को करने में संलग्न हो जाये, और सुक्रतु बन जावे।

वह कर्म केवल अपने स्वार्थ के लिये ही नहीं, परन्तु जिस प्रकार

मेघ शीतल जल बरसा कर वसुंधरा को फल-फूल से हरा-भरा कर देते हैं, इसी प्रकार जनता-जनार्दन की सेवा कर अपने ज्ञान तथा क्रिया से जनता में सुख की वृष्टि करे।

इस प्रकार अपने तेजस्वी परोपकारी जीवन से लोगों की आंखों का तारा बनकर वह उत्कृष्ट जीव लोकनायक बनकर अपना कर्त्तव्य-परायण जीवन सफल करे।

प्रभो ! हमारी सब की आत्माओं में ऐसी पवित्र प्रेरणा भरो, कि हम भी अपने जीवन को उत्कृष्ट बना सकें।।

गीत

ज्ञान और विज्ञान उभय का,
कोष सतत भरपूर रहे।
यज्ञरूप हों कर्म हमारे,
भाव स्वार्थ का दूर रहे।।

रहे सजग कल्याण कामना,
जीवन में सुख-वृष्टि करें।
ओजस्वी तेजस्वी बनकर,
नये जगत् की सृष्टि करें।।

सुप्रकाश के प्रहरी बन कर,
ब्रह्म तेज से दीप्त रहें।
आशा से उत्साह तेज से,
मन सब के उद्दीप्त रहें।।

—:o:—

दूषित वायु तथा दुष्ट जनों से दूर रह कर मन को प्रसन्न रखो

ऋषिः—आङ्गिरसः कुत्सः । देवता—अग्निः । छन्दः—विराड् जगती । स्वरः—निषादः ।।

अयं मित्रस्य वरुणस्य धायसेऽवयातां मरुतां हेळो अद्भुतः ।
मृळा सु नो भूत्वेषां मनः पुनरग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ।।
१।९४।१२।।

पदार्थः—

अग्ने—हे प्रकाशस्वरूप प्रभो ! आप हमारे हृदयों में,
अवयातां मरुताम्—गन्दी धूम्रपान आदि वायुओं, एवं दुष्ट मनुष्यों के लिये,
अयम् अद्भुतः हेळः—एक तीव्र घृणा तथा उपेक्षा की भावना पैदा करो । और
मित्रस्य वरुणस्य धायसे—प्राण-उदानरूपी शुद्ध वायु को हमारे भीतर धारण कराओ, तथा श्रेष्ठ मित्रों की संगति दो ।
पुनः एषां नः मनः—ताकि हमारे मन फिर
मृळा सुभूत्—अच्छे प्रकार आनन्द से भरपूर हों जावें ।
वयं तव सख्ये—हम तेरे मैत्रीभाव में
मा रिषाम—कभी दुःखों को प्राप्त न हों ।।

भावार्थः—मन को सदा प्रसन्न रखनें का उपाय इस मंत्र में अद्भुतरूप से वर्णन किया है।

मित्रता निभानेवाले श्रेष्ठ पुरुषों की संगति मन को सदा प्रसन्न रखती है । उनकी संगति स्थायी रखने के लिये, जो दुष्ट प्रकृति के मनुष्य हैं,उन से सदा दूर रहना चाहिये ।

इसी प्रकार मित्रवरुणरूपी प्राणप्रद प्राण उदान वायु को धारण करने से भी मन की चंचलता दूर होती है, तथा मन शान्त एकाग्र होकर परमात्मा के ध्यान में आनन्दविभोर हो जाता है ।

इस पवित्र वायु को धारण करने के लिये अपवित्र दुर्गन्धियुक्त

वायुओं से दूर रहना होता है। अतः धूम्रपान आदि बुरे व्यसनों को छोड़ कर ही मनुष्य पवित्र वायुमंडल में प्राणायाम द्वारा जीवनप्रद वायु को धारण कर सकता है, तथा शारीरिक स्वस्थता और और मानसिक शान्ति को प्राप्त कर सकता है।

और उस प्रकाशस्वरूप प्रभु की उपासनारूप मैत्री में रमण करनेवाला भक्त कभी दुःखों से पीडित नहीं होता।

प्रभुदेव! कृपा करो। हमें धूम्रपान आदि दुर्व्यसनों से छुटकारा पाने की शक्ति प्रदान करो, और अपनी भक्ति का दान दो, जिस से हमारे मन सदा अनुपम आनन्द का रसास्वादन करते रहें॥

गीत

श्रेष्ठ जनों की संगति में रह,
जीवन-मार्ग प्रशस्त करें।
दूर व्यसन हों, अपने को नित,
सत्पथ में अभ्यस्त करें॥

प्राणायाम-परायण हों हम,
तन में बहे विशुद्ध पवन।
शुभ्र भावों से पूर्ण रहे मन,
रहे निरंतर निर्मल तन॥

प्रियतम प्रभु की अमर प्रीति में,
अहनिशि हम लवलीन रहें।
अमिट रहे उत्साह प्रज्वलित,
भवभय मिटे अदीन रहें॥

—:०:—

उत्साहवान् मनुष्य को दिन-रात उल्लास से तृप्त करते हैं, जैसे पतिव्रता स्त्रियां पतियों को प्रसन्न रखती हैं

ऋषिः—आङ्गिरसः कुत्सः । देवता—सत्यगुणविशिष्टोऽग्निः शुद्धोऽग्निर्वा । छन्दः—निचृत्त्रिष्टुप् । स्वरः—धैवतः ॥

उभे भद्रे जोषयेते न मेने गावो न वाश्रा उप तस्थुरेवैः ।
स दक्षाणां दक्षपतिर्बभूवाञ्जन्ति यं दक्षिणतो हविर्भिः ॥
ऋ० १।९५।६॥

पदार्थः—
यम्—जिस मनुष्य को,
उभे भद्रे—दिन और रात, दोनों कल्याणमयरूप धर कर,
दक्षिणतः—प्रति क्षण
एवैः हविर्भिः युञ्जन्ति—उत्साह और उल्लास से परितृप्त रखते हैं,
मेने न जोषयेते—जैसे प्रणयशीला स्त्रियां अपने पति को परितृप्त रखती हैं,
वाश्रा गावो न उपतस्थुः—और जैसे गौवें अपने बछड़े के चारों ओर प्यार से मण्डराती हैं,
स दक्षाणां दक्षपतिः बभूव—वह मनुष्य जीवन में सदैव उत्साहवान् और कुशल होकर विचरण करता है ॥

भावार्थः—पवित्र जीवन व्यतीत करनेवाले मनुष्य का मन सदैव आशा और उल्लास से परिपूर्ण रहता है। दिन और रात उसे सदा आनन्द का सन्देश देते हैं। पतिव्रता स्त्री के सान्निध्य में जिस प्रकार पति का मन परितृप्त रहता है, और गोमाता के संरक्षण में बछड़ा पूर्ण आश्वस्त अनुभव करता है, उसी प्रकार वह मनुष्य जीवन के प्रत्येक क्षण को निर्भय और उल्लसित होकर जीता है ॥

गीत

प्रणयशील पत्नी की संगति,
पति में भर देती उल्लास।

जैसे बछडा निर्भय रहता,
अपनी गो-माता के पास ॥

उसी भान्ति जिसका जीवन है,
धर्म कर्म से नित निष्पाप ।
क्षण-प्रतिक्षण आमोद रहे औ,
वहां रहे प्रभु अपने आप ॥

रात-दिवस की शुभ घड़ियां भी,
नित नूतन उत्साह भरें ।
यज्ञरूप कर्मों से भूषित,
दक्षपति वही नाम धरें ॥

—:०:—

जैसे माता शिशु को दूध पिलाती है, ऐसे भगवान् भक्त को दिन-रात अमृतरस पिलाते हैं

ऋषिः—आङ्गिरसः कुत्सः। देवता—द्रविणोदा अग्निः शुद्धोऽग्निर्वा। छन्दः—त्रिष्टुप्। स्वरः—धैवतः॥

नक्तोषासा वर्णमामेम्याने धापयेते शिशुमेकं समीची।
द्यावाक्षामा रुक्मो अन्तर्विभाति देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम्॥

ऋ० १।९६।५॥

पदार्थः—

देवाः—जो विद्वान् लोग,
अग्निं धारयन्—उस परमात्मा तथा आत्मारूपी अग्नि को धारण करते हैं, जो
द्रविणोदाम्—धन तथा ज्ञानरूपी द्रविण को देनेवाली हैं, उन विद्वानों को,
द्यावाक्षामा—द्युलोक तथा पृथ्वी से,
रुक्मः अन्तर्विभाति—अन्तःकरण में ज्योति का प्रकाश मिलता है। तथा
नक्तोषासा—रात और दिन उसको,
आमेम्याने वर्णम्—न नष्ट होनेवाला प्रभुदर्शन का आनंदामृत ऐसे पिलाते हैं, जैसे
शिशुमेकं समीची—दो माताएं एक बच्चे को प्रेम से समीप लेकर
धापयेते—दूध पिलाती हैं॥

भावार्थः—धन ऐश्वर्य तथा ज्ञान प्रदान करनेवाले प्रभु की, विद्वान् लोग ध्यान-योग द्वारा जब उपासना करते हैं, तो उनको आत्मस्वरूप का भान होता है। दिन रात उस उपासक के मन में अनहद नाद बजता रहता है। प्रभु के आनन्दस्वरूप में निमग्न वह उस रसस्वरूप प्रभु का ऐसे रसास्वादन करता है जैसे एक शिशु दो माताओं से दुग्धपान का रस लेता है।

उस उपासक के चित्तमण्डल में द्युलोक की सी अनुपम ज्योति भास्वरित हो उठती है। तथा—

"बृहज्ज्योति करिष्यतः सविता प्रसुवाति तान्"

इस पावन मंत्र के अनुसार सविता देव बृहत् ज्योति को प्रकट करके उस उपासक को अपनी आनन्दमयी गोद में बैठा लेते हैं।

इस प्रकार द्युलोक तथा पृथ्वीलोक रात-दिन उस देव की नाम खुमारी में मदमस्त करते रहते हैं

प्रभु कृपा करें!! हम सब भी द्रविण देनेवाली अग्नि को धारण कर सकें॥

गीत

स्वात्मरूप के दर्शन से जब,
चिदाकाश जगमग करता।
लोकातीत हर्ष का मन में,
झरना है झर-झर झरता॥

स्तन्य पान-प्रमुदित शिशु पर ज्यों,
स्नेहांचल मां फैलाती।
त्यों मस्ती की लहर अनूठी,
साधक मन पर लहराती॥

मिल जाता तब अमर ज्योति का,
साधक को तत्क्षण वरदान।
द्यावापृथ्वी उसे रिझाते,
मिट जाता लघुता का भान॥

—:o:—

शक्तिशाली प्रकाशित आत्मा हमारी रक्षा करे

ऋषिः—मरीचिपुत्रः कश्यपः। देवता—इन्द्रः। छन्दः—त्रिष्टुप्। स्वरः—धैवतः॥

दिवो न यस्य रेतसो दुघानाः पन्थासो यन्ति शवसापरीताः।
तरद्द्वेषाः सासहिः पौंस्येभिर्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती॥

ऋ० १।१००।३॥

पदार्थः—

यस्य पन्थासः—जिस वीर पुरुष के जीवन के मार्ग
यन्ति—अग्रसर होते हैं,
दिवो न—तथा सूर्य के प्रकाश के समान ज्ञान से प्रदीप्त हैं, तथा
रेतसः दुघानाः—अमित पराक्रम को धारण किये हुए हैं, और
शवसा अपरीताः—जिन मार्गों को मानसिक बल ने नहीं त्यागा, और
तरत् द्वेषाः—जिन पर चलते हुए उसने सब द्वेष की भावनाओं को जीत लिया है, ऐसा
मरुत्वान् इन्द्रः—प्राण आदि शक्तियों का पुञ्ज, महाभाग्यशाली ओजस्वी आत्मवान् पुरुष, अपनी साहसपूर्ण शक्तियों द्वारा
नः ऊनी भवतु—हमारी रक्षा का ढाल बन जावे॥

भावार्थः—इस ऋचा में उद्बुद्ध ऐश्वर्योन्मुख आत्मा का वर्णन है, जो अपनी रक्षा स्वयं आप करती है।

ऐसी उज्ज्वल आत्मा सूर्य के समान प्रकाश लिये, अपने जीवन के मार्गों को सदा ज्योतिस्तंभ बनकर प्रकाशित करती है। जीवन-व्यवहार के सब उत्तम कार्यों को अपनी सहजशक्ति से परिपूर्ण करती है। दिव्य पराक्रम उसे कभी छोड़ कर नहीं जाता। अपनी जीवनरूपी नौका से द्वेष के प्रचंड प्रवाह को वह पार कर जाता है।

ऐसी मरुत्वान् इन्द्र-शक्ति को, अपनी सब प्रकार की रक्षा के लिये आह्वान किया गया है।

उस ऐश्वर्यशाली इन्द्र की उपासना करते हुए, अपने आपको उस से रक्षित अनुभव करते हुए, तथा विज्ञानी विद्वानों की संगति करते हुए अपनी आत्मा में निहित अन्तर्शक्ति का आह्वान किया है, जो प्राण-शक्ति से भरपूर रहकर सदा हमारी रक्षा करे ।।

गीत

प्राणशक्ति जिस की जागृत है,
मिला जिसे प्रभु का आश्रय ।
रक्षक अपना स्वयं आप वह,
मिट जाता सब भय-संशय ।।

राग-द्वेष से ऊपर उठ कर,
करता वह निर्भय विचरण ।
ज्योतित हो उठता प्रकाश से,
जीवन के पथ का कण-कण ।।

—:०:—

ऐश्वर्य-प्राप्ति की इच्छा तथा पुरुषार्थ से प्रेरित मानव सब स्थानों में सोमरस का पान करता है

ऋषिः—आङ्गिरसः कुत्सः । देवते—इन्द्राग्नी । छन्दः—त्रिष्टुप् । स्वरः—धैवतः ॥

यावदिदं भुवनं विश्वमस्त्युरुव्यचा वरिमता गभीरम् ।
तावाँ अयं पातवे सोमो अस्त्वरमिन्द्राग्नी मनसे युवभ्याम् ॥
ऋ० १।१०८।२॥

पदार्थः—

यावदिदं विश्वं भुवनम्—जितना यह सम्पूर्ण जगत्
उरुव्यचा—अति व्याप्त,
वरिमता गभीरम् अस्ति—विशाल तथा गंभीर है,
तावान्—उतना ही सब स्थानों से
अयं सोमः—यह सुख-प्रद सोमरूपी रस, मानव को
पातवे अस्तु—पान करने के लिये प्राप्त हो । परन्तु यह
मनसे अरम्—भरपूर मिलता उस मन को है,
इन्द्राग्नी युवभ्याम्—जिसमें ऐश्वर्य-प्राप्ति की उत्कट प्रेरणा, तथा उसे प्राप्त करने का सात्विक उत्साह हो ॥

भावार्थः—समूचा विश्व सोमरस से भरपूर हो जाता है । कब ? जब आत्मा में इन्द्र तथा अग्नि का वास हो जाता है । इन्द्ररूपी सब प्रकार का ऐश्वर्य, अह्लाद प्राप्त करने की उत्कट भावना, जिस मानव-हृदय में उत्पन्न हो जाती है, और उसे प्राप्त करने के लिये ज्ञान-पूर्वक पुरुषार्थ करने की अग्नि जब जीवन में प्रज्वलित हो उठती है, तब इस रहस्यमय विशाल जगत् में, जहां-जहां यह दृष्टिगोचर होता है, वहां-वहां उत्पादनशक्ति द्वारा सोमरस सफलता का दूत बनकर टपकने लगता है । मानव-हृदय अनुपम रस का रसास्वादन करता है । क्योंकि उसके प्रति प्रयास के पीछे इन्द्र तथा अग्निरूपी जोडे का ज्ञान-पुरुषार्थ भर रहा होता है ।

प्रभु प्रेरणा से इन्द्र-अग्निरूपी दोनों देवों को हम अपने आत्मा

में जागृत करें, और जीवन-साफल्य के अनुपम सोम रस का पान करें ॥

गीत

हो अनुपम वैभव हमारा,
इंद्र देव कृपा करें।
अग्नि देव सदा हमारे,
तेज से मन को भरें॥

सोम-रस से अनवरत,
जीवन सदा भरपूर हो।
सृष्टिके मधु सार से,
दुःख दर्द क्षण में दूर हो॥

प्ररणा ऐसी भरो,
उत्साह से जलते रहें।
ज्ञान कर्म उपासना,
फूले रहें फलते रहें॥

—:o—

उत्साहित जीवन की गगनचुम्बी सफलता

ऋषिः—आङ्गिरसः कुत्सः । देवता—इन्द्रः । छन्दः—निचृत् जगती । स्वरः—निषादः ः।

उत ते शतान्मघवन्नुच्च भूयस उत सहस्राद्रिरिचे कृष्टिषु श्रवः।
अमात्रं त्वा धिषणा तित्विषे मह्यधा वृत्राणि जिघ्नसे पुरंदर ॥
ऋ० १।१०२।७॥

पदार्थः—

मघवन्—हे महान् ऐश्वर्यों से युक्त विद्वान् नेता!
ते श्रवः—आपका बल तथा कीर्त्ति,
शतान् उत सहस्रात् उत्—सैंकडों तथा हजारों,
भूयस उत कृष्टिषु—और उन से भी अधिक लाखों करोडों मनुष्यों की कीर्ति से
रिरिचे—आगे निकल गयी है ।
त्वा मही धिषणा—आपकी धारणावती बुद्धि तथा ओजस्विनी वाणी,
अमात्रं तित्विषे—सब सीमाओं को पार कर चमक उठी है ।
पुरन्दर—हे विघ्नरूपी दुर्गों को नाश करनेवाले!
अधा वृत्राणि जिघ्नसे—आप अपनी विघ्न-बाधाओं को ऐसे दूर करते हो, जैसे सूर्य अपनी तीक्ष्ण किरणों से बादलों को छिन्न-भिन्न कर देता है ॥

भावार्थः—उच्च कोटि के जन नेता का इस ऋचा में सुन्दर दिग्दर्शन है । ज्ञानपूर्वक सतत पुरुषार्थ करता हुआ जीव, नाना प्रकार के ऐश्वर्यों को प्राप्त करता, सैंकड़ों हजारों लाखों मनुष्यों को पीछे छोड़ जाता है । वह अपनी कीर्ति की चरम सीमा पर पहुंच जाता है । वह नेता, सभापति, सेनापति किसी भी उच्च पद पर आरुढ़ हो जाता है । तब उसकी बुद्धि तथा प्रकाश इतना चमकता है, जिसकी सीमा नहीं रहती ।

वह सब प्रकार की विघ्न-बाधाओं को इस प्रकार छिन्न-भिन्न

करता जाता है, जैसे सूर्य अपनी किरणों से घने मेघों को नष्ट कर देता है। इस प्रकार विकास-पथ पर अग्रसर होता हुआ, सब विघ्नों को विदारण करता हुआ वह पुरन्दर बन जाता है, और सूर्य की भान्ति संसार में चमकता है।

प्रभो ! प्रेरणा दो कि हम भी अपने जीवनों को इतना ऊंचा उठा सकें !!

गीत

तेजसे सपन्न नेता,
अग्रसर रहता सतत है।
विघ्न-बाधा से न किंचित्,
मार्ग में होता प्रणत है॥

अनायास असंख्य जनता,
अनुकरण कर बैठती है।
गूंजती वाणी सभी के,
हृदय में जा पैठती है॥

वह अदम्य महान् नेता,
जिस तरफ पग धारता है।
शत्रु तब अविलम्ब बेबस,
सिर झुकाता हारता है॥

—:०:—

सूर्य से प्रकाशित चन्द्र के समान आत्मा प्रभु की ज्योति में रमण करता है

ऋषिः—आप्त्यस्त्रितः आङ्गिरसः कुत्सो वा। देवताः—विश्वे देवाः। छन्दः—पङ्क्तिः। स्वरः—पञ्चमः॥

चन्द्रमा अप्स्व१न्तरा सुपर्णो धावते दिवि।
न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतो वित्तं मे अस्य रोदसी॥
ऋ० १।१०५।१॥

पदार्थः—

सुपर्णः चन्द्रमा—जिस प्रकार सुन्दर पंखोंवाला चन्द्रमा, आकाश में स्थित पवनों में दौड़ता है, इसी प्रकार उच्चाकांक्षाओं के पंखों पर उड़ान भरनेवाला जीवात्मा, अपने प्राणरूपी पवनों में विचरण करता हुआ, प्रभु के ज्ञान से प्रकाशित होता है।

वः पदम्—उसके स्वरूप को,

हिरण्यनेमयः विद्युतः—चमक-दमकवाली विद्युत्, अथवा तड़क-भड़कवाली भौतिक चकाचौंध

न विन्दन्ति—नहीं जान सकतीं।

रोदसी—सूर्य से लेकर पृथ्वीपर्यन्त

मे अस्य वित्तम्—जानने योग्य पदार्थों में यह तत्त्व मैंने जाना॥

भावार्थः—इस ऋचा में सुपर्ण चन्द्रमा की उपमा देकर आत्म-तत्त्व को जानने का रहस्य बताया है।

जिस प्रकार अच्छे पंखोंवाला, चित्त को आह्लादित करनेवाला चन्द्रमा, आकाश में स्थित पवनों में विचरण करता हुआ, सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होता है, इसी प्रकार जीवात्मा प्राण अपान आदि दस प्राणवायुओं द्वारा क्रीड़ा करता हुआ, सूर्यरूपी परमात्मा के ज्ञान से प्रकाशित होता है।

उस के स्वरूप को भौतिक चमक-दमकरूपी विद्युत् से जान नहीं सकते।

जीवात्मा के लिये प्रभुदेव सुन्दर उपदेश तथा आदेश कर रहे हैं कि चन्द्र के समान शीतल सौम्य बनकर संसार में सुख का संचार करो। तथा जिस प्रकार सूर्य से चन्द्रमा प्रकाश प्राप्त करता है, इसी प्रकार उपासना-योग द्वारा प्रभु के अनन्त दिव्य गुणों का ध्यान कर, उन्हें जीवन में धारण कर दिव्य प्रकाश से अपनी आत्माओं को प्रकाशित करो। भौतिक तड़क-भड़क के ढकने के नीचे आत्मा तथा परमात्मारूपी सत्य ढका हुआ है। उस अविद्या के पर्दे को ज्ञान के प्रकाश द्वारा हटा कर उस अमृत-तत्त्व को जानो, और जीवन में आनन्द प्राप्त करो।

यही जीवन में जानने योग्य तत्त्व है ॥

गीत

पवन-पंख पर भर उड़ान शशि,
नभ में ज्यों करता विचरण।
होकर सवार त्यों प्राणों पर,
जीवात्मा उड़ता प्रतिक्षण ॥

लेकर दिनकर की परम ज्योति,
करता उसका वह वितरण।
त्यों परम ज्योति का अंश जीव,
ज्योतित करता है कण-कण॥

जीवन का यह निभृत रहस्य,
है निभृत ही रह जाता।
आकुल कर देती चकाचौंध,
मन उबर नहीं तब पाता ॥

—:०:—

विद्वान् लोग नित्य नवीन प्रवचनों द्वारा सत्य का उपदेश करें

ऋषिः—आप्त्यस्त्रितः, आङ्गिरसः कुत्सो वा देवताः—विश्वे देवाः। छन्दः—पङ्क्तिः। स्वरः—पञ्चमः॥

नव्यं तदुक्थ्यं हितं देवासः सुप्रवाचनम्।
ऋतमर्षन्ति सिन्धवः सत्यं तातान सूर्यो वित्तं मे अस्य रोदसी॥

ऋ० १।१०५।१२॥

पदार्थः—

सूर्यः सिन्धवः—जिस प्रकार सूर्य समुद्रों से

सत्यम् ततान—जल को किरणों द्वारा ऊपर खींच कर फिर वर्षा द्वारा भूमि पर फैला देता है,

देवासः—इसी प्रकार विद्वान् लाग,

तत् नव्यम्—उस नित्य नवीन,

उक्थ्यम् हितम्—प्रशंसनीय तथा हितकारी,

ऋतम् सुप्रवाचनम्—वेदानुकूल सत्य प्रवचन को

अर्षन्ति—सुनाते हैं।

वित्तम् मे अस्य रोदसी—इस पृथ्वी से लेकर आकाशपर्यन्त ब्रह्माण्ड में मैंने यह तत्त्व जाना है॥

भावार्थः—ज्ञानी विद्वान् लोग सदा सत्य का उपदेश करें, इसी उच्च भाव की सत्प्रेरणा इस मंत्र में है।

प्रकृति के विशाल रङ्गमञ्च पर प्रतिदिन हम देखते हैं कि सूर्य अपनी किरणों द्वारा सागर की लहरों से कल्लोलें करता है। समुद्र के जलों को उत्तप्त करके वाष्प बनाता है, और किरणों द्वारा अपनी ओर खींच लेता है। पुनः वही सूर्य सहस्रधाररूपी वृष्टि से जल बरसा कर संसार को तृप्त करता है। वसुन्धरा को हरियाली से भर देता है, और अन्न वनस्पतियों को पैदा करके नया-नया जीवन प्रदान करता रहता है।

इसी प्रकार वेदवित् तत्त्ववित ज्ञानियों को इस अनुपम दृश्य

से प्रेरणा मिलती है कि वे भी अपने ज्ञान तथा अनुभव द्वारा प्राप्त उस सत्य-ज्ञान का संसार में सदा उपदेश करें। ऐसा सत्यज्ञान सदा नया-नया प्रतीत होता है, और प्रजा के लिये हितकारी तथा प्रशंसनीय होता है। ऐसे सुप्रवचन मनुष्यों की प्रसुप्त आत्माओं के उद्धार करने-वाले हों।

देश की वर्तमान स्थिति में ऐसे उच्च प्रवचनों की नितान्त आवश्यकता है। इन सदुपदेशों के अभाव में घरेलू पारिवारिक जीवन, सामाजिक जीवन तथा राष्ट्रीय जीवन द्रुतगति से अधोगति को प्राप्त हो रहे हैं।

वेद की यह ऋचा चेतावनी दे रही है कि इस तथ्य को हम जानें, और श्रेष्ठ विद्वानों का प्रवचन-प्रवाह घर-घर में पुनः प्रवाहित करें। ताकि साधारण जीवनों का स्तर ऊंचा उठ सकें॥

गीत

जलनिधि का लेकर सार गहन,
दिनकर भू पर बरसाता।
खिल उठता क्षण में जड-जंगम,
जीवन को वह सरसाता॥

त्यों वेद-ऋचाओं का मंथन,
विद्वान् सदा करता है।
नित नूतन अद्भुत भावों से,
जन-मानस को भरता है॥

यह जीवन का निभृत रहस्य,
जैसे-जैसे खुलता है।
उत्साह नवल भर जाता है,
अज्ञान सकल धुलता है॥

—:०:—

जीवन-रक्षा-हेतु आत्मिक शक्तियों को जगाओ

ऋषिः—आङ्गिरसः कुत्सः। देवताः-विश्वे देवाः। छन्दः-जगती। स्वरः—निषादः॥

इन्द्रं मि॒त्रं वरु॑णम॒ग्निमू॒तये॒ मारु॑तं॒ शर्धो॒ अदि॑तिं हवामहे।
रथं॒ न दु॒र्गाद्व॑सवः सुदानवो॒ विश्व॑स्मान्नो॒ अंह॑सो॒ निष्पि॑पर्त्तन॥
ऋ० १।१०६।१॥

पदार्थः—

ऊतये—अपनी रक्षा के लिये, हम
अग्निम्—अग्नि के समान आगे ले जानेवाली आत्मिक-शक्ति को,
इन्द्रम्—ऐश्वय देनेवाले उत्साह को,
मित्रम्—प्राणवायु तथा मैत्रीभाव को,
वरुणम्—उदानवायु तथा वरने योग्य उत्कृष्टता को,
मारुतं शर्धः—प्राणों से सम्पन्न होनेवाले बल को, तथा
अदितिम्—न खण्डित होनेवाली सब शक्तियों को,
हवामहे—अपने आत्मा में जगाते हैं, उन शक्तियों को बुलाते हैं।
वसवः—ज्ञान आदि को अपने भीतर बसानेवाले विद्वानों!
सुदानवः-और उस ज्ञान-भंडार का विमुक्त वितरण करनेवाले देव लोगो! आप लोग
नः—हमें
विश्वस्मात् अंहसः निष्पिपर्त्तन—संपूर्ण पापों से इस प्रकार बचाओ;
रथं न दुर्गात्—जैसे रथ को कठिन मार्गों से बचाया जाता है॥

भावार्थः—जीवन रथ चल रहा है। चलते-चलते जब विविध प्रकार की कठिनाइयों वा पापों से बचाने की आवश्यकता होती है, तो अपनी ही आत्मशक्ति को विविध प्रकार से जगाना होता है। आत्म-शक्ति जागृत हो उठे, तो कोई कठिनाई नहीं रहती। रक्षा को देवी दासी बनकर करबांध उपस्थित हो जाती है। वह शक्तियां क्या हैं? उन्हीं की सुन्दर गणना इस मन्त्र में है।

इन्द्र द्वारा ऐश्वर्य की भावना आत्मा में जागृत होती है। उस ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये प्राण-उदान वायुओं का सहारा लेकर शारीरिक तथा मानसिक शक्ति उभरती है। इन से अग्नि की ज्वाला भीतर जलने लगती है। और जीवन-रथ आगे को बढ़ता है। ज्ञान-प्राप्ति द्वारा लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये अदम्य शक्ति आने लगती है। बलदायिनी शक्तियों के साथ न खंडित होनेवाले प्रकाश तथा ज्ञान का आह्वान किया जाता है।

इन सब देवों के आत्मा में जागृत हो जाने पर मानव-जीवन सब प्रकार के पापाचरणों से इस प्रकार मुक्त हो जाता है. जैसे कुशल सारथी रथ को दुर्गम मार्गों से बाहर निकाल लेता है।

ऐसे ही ज्ञानी-दानी विद्वानों से रक्षित जीवन निष्पाप बन कर, अपने आनन्द-प्राप्ति के ध्येय की ओर अग्रसर हो जाता है।

प्रभु हमें प्रेरणा दें, कि हम भी इन सब आत्म-शक्तियों को जागृत कर, श्रेष्ठ विद्वानों की संगति कर पापाचरणों से बचें, और अपनी जीवनयात्रा सफल करें !!

गीत

हे अग्नि ! परम तेजोनिधान,
हम बन जायें तेजस्वी ।
हे इन्द्र ! दान दो वैभव का,
हम सदा रहें ओजस्वी ।।

तुम मित्र सकल जगती के हो,
माधुर्य भरो जीवन में ।
वरणीय बनें हे वरुण देव,
खिल आओ इस उपवन में ।।

बल साहस हो उत्साह अतुल,
औ आत्मशक्ति वह जागे ।
हम हों अदम्य निर्द्वन्द्व वीर,
अवसाद पलक में भागे ।।

—:०:—

पवन तथा बिजली द्वारा पदार्थों को उत्पन्न कर सुख भोगो

ऋषि—आङ्गिरसः कुत्सः। देवते—इन्द्राग्नी। छन्दः—विराट् त्रिष्टुप्। स्वरः—धैवतः॥

यदिन्द्राग्नी दिवि ष्ठो यत्पृथिव्यां यत्पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु ।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥
ऋ० १।१०८।११॥

पदार्थः—

यदिन्द्राग्नी—जो पवन तथा बिजली की शक्तियां
दिवि स्थ—द्युलोक में हैं,
यत् पृथिव्यां—जो पृथिवी में हैं, तथा
यत् पर्वतेषु ओषधीषु अप्सु—जो पर्वतों में, ओषधियों में, और जलों में हैं,
अतः—वे सब पवन तथा बिजली की शक्तियां
परिवृषणौ—चारों ओर से सुखों की वर्षा करती हुई,
आ हि यातम्—निश्चितरूप से हमारे पास आएं।
अथ सुतस्य सोमस्य पिबतम्—तथा उत्पन्न किये हुए पदार्थों द्वारा हमें सुखरूपी सोमरस का पान कराएं॥

भाषार्थः—ऐश्वर्य की प्रतीक पवनशक्ति तथा गति की प्रतीक बिजली शक्ति के सम्यक् ज्ञान तथा मेल के बिना सुख देनेवाले पदार्थों का उत्पादन नहीं हो सकता। इस मन्त्र में इसी ओर संकेत है कि समूचे संसार में जो भी इन्द्र तथा अग्नि की शक्तियां द्युलोक में हैं, पृथ्वी के धरातल पर हैं, पर्वतों में, ओषधियों में, अथवा जलों में हैं, उन सब का ज्ञान प्राप्त कर, उन्हें ठीक प्रकार से जब प्रयोग में लाया जाता है, तो वही शक्तियां चहुं ओर से सुख की वर्षा करने के हेतु उमड़-घुमड़ कर निश्चय हमारे पास आती हैं। उन उत्पादित पदार्थों से जो सुखरूपी सोमरस प्राप्त होता है, उससे इन्द्र व अग्नि का ज्ञान रखनेवाले मनुष्य सुख-भोग प्राप्त करते हैं।

प्रभु हमें प्रेरणा दे कि हम भी इन शक्तियों को जानकर इन्हें जगाकर जीवन में सोमरस का पान करें !!

गीत

पवन शक्ति है व्याप्त गगन में,
भू-पर और सलिल में ।
वही शक्ति है ओषधियों में,
अन्तर्हित जल-थल में ।।

इसी भान्ति है अग्नि-शक्ति का,
स्रोत चरा-चर सारा ।
विद्युत् का दोहन करलें बस,
है पुरुषार्थं हमारा ।।

विद्युत् से सुख भोग जुटाएं,
और कला-कौशल भी ।
बढ़े संपदा जन-जन की औ,
बढ़े देश का बल भी ।।

—:०:—

दान-दक्षिणा देने से जीवन में अमृत-सुख मिलता है

ऋषिः—दैर्घतमसः कक्षीवान्। देवते—दम्पती। छन्दः—निचृत् त्रिष्टुप्। स्वरः—धैवतः॥

दक्षिणावतामिदिमानि चित्रा दक्षिणावतां दिवि सूर्यासः।
दक्षिणावन्तो अमृतं भजन्ते दक्षिणावन्तः प्र तिरन्त आयुः॥
ऋ० १।१२५।६॥

पदार्थः—

दक्षिणावताम् इत्—जिन्होंने उत्तम विद्या तथा धनरूपी दक्षिणा प्रदान की है, उन को ही

इमानि चित्रा—ये प्रत्यक्ष दीखनेवाले चित्र-विचित्र सुख मिलते हैं।

दक्षिणावताम्—जो धन तथा विद्या का दान करनेवाले हैं, वे

दिवि सूर्यासः—द्युलोक में चमकते सूर्य के समान तेजस्वी जीवन को प्राप्त हो जाते हैं।

दक्षिणावन्तः अमृतं भजन्ते—उत्तम विद्या के दान करनेवाले पुरुष अमृत-सुख को प्राप्त करते हैं।

दक्षिणावन्तः प्रतिरन्त आयुः—योग्य वैद्यों को दक्षिणा देनेवाले मनुष्य पूर्ण स्वास्थ्य का भोग करते हैं॥

भावार्थः—दान-दक्षिणा की महिमा का कितना सुन्दर वर्णन इस ऋचा में है!!

पहिले गुरुजनों से सब प्रकार की उत्तम विद्या प्राप्त कर, पुनः धर्मपूर्वक अपार धनराशि को एकत्रित कर, मनुष्य दोनों का दान करे। ऐसा दक्षिणावान् पुरुष सब प्रकार के चित्र-विचित्र सुखों का स्वामी बन जाता है।

उसी दक्षिणा के मुक्त दान से ऐसे कार्यकर्त्ता विद्वान् पुरुष मिल जाते हैं, जो सूर्य के समान आकर्षक गुणोंवाले होते हैं, और अपनी कुशलता से उसके महान् कार्य को सफल बना देते हैं। इसी प्रकार उस धनवान् की अतुल-राशि से जब आत्मवित् ब्रह्मवेत्ता विद्वानों को प्रचुर धन मिलता है, वेद तथा धर्म की रक्षा के लिये बड़े-बड़े ट्रस्ट

बनते हैं, तो अनायास ही उसे आत्मिक संतोष का अमृतरस मिलता है।

अपने जीवन को नीरोग रखने के लिये बड़े-बड़े योग्य वैद्यों को जब वह सात्त्विक भाव से प्रचुर धन का दान करता है, तो उन के सत्परामर्श से,सोम ओषधि तथा फल-आसव आदि रसों के पान तथा स्वर्ण-लोहयुक्त उत्तम रसायनों के सेवन से वह अपनी पूर्ण शत वर्ष की आयु नीरोग एवं ओजपूर्ण व्यतीत करता है।

दान हमारे यज्ञ-मय जीवन का प्रमुख भाग है। इस ऋचा में इसी दान की महिमा का दक्षिणा के रूप में वर्णन किया गया है। इस ऋचा के द्वारा हम प्रेरणा लेवें।

ब्राह्मण विद्वान् विद्या को दान के रूप में प्रसारित करें। क्षत्रिय अभय का दान देवें; वैश्य बड़े-बड़े धार्मिक ट्रस्ट बनाकर वैदिक-साहित्य की रक्षा करें। वेद को साङ्गोपाङ्ग पढ़नेवाले विद्यार्थियों का उचित प्रवन्ध करें, और सेवाभाववाले अपनी सेवा का दान करें। तभी राष्ट्र अपने खोये हुए गौरव को पुनः प्राप्त कर सकता है।

प्रभु देव ! हम सब को दानशील, दक्षिणावान् बनाओ !!

गीत

गुरुजनों के चरणों में बैठ हम,
नित सँजोएं ज्ञान का भण्डार।
अथक श्रम से फिर रहें भरपूर,
नित बढ़े सुख-संपदा का सार॥

और फिर हम दक्षिणा के व्रती,
दान दें सत्पात्र को सुविचार।
धन सहायक हो सदा जन जाति का,
ज्ञान का हो नित्य ही विस्तार॥

लक्ष्य एक रहे सदा उपकार का,
सफल जीवन को करें सब ओर।
दान की महिमा न बिसराएं कभी,
अमृत-सुख का छू सकें हम छोर॥

—:०:—

धर्मात्मा के समीप पहुँचने के लिये मन जैसी शीघ्र गतिवाला विमान बनाओ

ऋषि:—अगस्त्यः । देवते—अश्विनौ । छन्द:—त्रिष्टुप् । स्वर:—धैवतः ॥

तं युञ्जाथां मनसो यो जवीयान् त्रिवन्धुरो वृषणा यस्त्रिचक्रः ।
येनोपयाथः सुकृतो दुरोणं त्रिधातुना पतथो विर्न पर्णैः ॥

ऋ० १।१८३।१॥

पदार्थ:—

वृषणाः—हे सर्वविद्या-संपन्न शिल्पविद्या के विद्वानो !
तं युञ्जाथाम्—उस यान को जोड़ो,
यो मनसो जवीयान्—जो मन की गति से भी शीघ्र उड़नेवाला हो;
यः त्रिधातुना—जो तीन धातुओं से बना हो,
त्रिबन्धुरः—जिसमें तीन बांधनेवाली कीलें (Fastners) हों,
त्रिचक्रः—और तीन चक्रोंवाले पुर्जे हों,
विः पर्णैः नः पतथः—जो पक्षी के पंखों के समान उड़ता हो,
येन—जिसके द्वारा
सुकृतः दुरोणम्—श्रेष्ठ कर्म करनेवाले धर्मात्मा के घर के समीप
उपयाथः—पहुंच सकें ॥

भावार्थः—विमान-रचना का वर्णन इस ऋचा में है । अभी तक वैज्ञानिकों ने कोई ऐसा वायुयान नहीं बनाया, जो मन की गति जैसा वेगवान् हो । वायुयान रचना की यह पराकाष्ठा है ।

ऋचा ने यह आदेश दिया कि ऐ शिल्पविद्या के जाननेवाले वैज्ञानिको ! तुम ऐसा यान निर्माण करो, जो शुभ कर्म करनेवाले धर्मात्मा आप्त पुरुषों के घरों तक पहुंचने के लिये मन की गति से भी अधिक वेगवान् गति से चलनेवाला हो। ऐसा यान तीन प्रकार की विशिष्ट धातुओं से बनाओ, जिनमें तीन प्रकार के जोड़ (Fasteners) हों, तथा तीन प्रकार के चक्र हों । वह विमान आकाश में द्रुतगति से

ऐसा उड़ता चला जाए, जैसे सुन्दर पंखों से पक्षी उड़ते हैं। वेदवाणी ने तो ज्ञान का निर्देश कर दिया। अब यह वैज्ञानिक शिल्पियों का कार्य है कि अनुसंधान करके ऐसे "मनसो जवीयः" यानों की रचना करें। 'सुकृत' शब्द देकर यह भी निर्देश कर दिया कि ऐसे यान संसार का नाश करनेवाले न हों, प्रत्युत धर्म की पालना करनेवाले आप्त जनों के मार्ग पर चलनेवाले हों।

प्रभु हमें प्रेरणा दें कि धर्म की रक्षा के लिये हम ऐसे द्रुतगतिवाले यानों का निर्माण कर सकें!!

गीत

निर्माण करो द्रुतगतिवाले,
नभ-मंडल में उड़ते विमान।
जो मन को भी पीछे छोड़ें,
नित हो ऐसी जिनकी उड़ान॥

हों धातु तीन, हों जोड़ तीन,
हों उनमें अद्भुत चक्र तीन।
विहगों से सुन्दर मनहर हों,
चालक हों उनके अति प्रवीन॥

सत्कार्य सदा सम्पन्न करें,
सत्संगति के नित साधक हों।
उनसे श्रुति-ज्ञान अबाध चले,
जीवन के कभी न बाधक हों॥

—:०:—
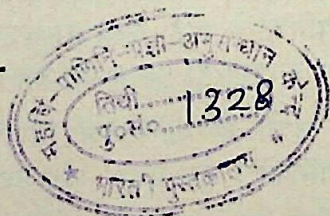
रामलाल कपूर ट्रस्ट के प्रकाशन

१. **ऋग्वेदभाष्य—(संस्कृत-हिन्दी)**—ऋषि दयानन्द सरस्वतीविरचित। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका तथा प्रतिभाग सहस्राधिक टिप्पणियों, १०-११ प्रकार के परिशिष्टों वा सूचियों के सहित। संपादक—श्री पं० युधिष्ठिर मीमांसक। प्रथम भाग ३५-००, द्वितीयभाग ३०-००, तृतीयभाग ३५-००।

२. **यजुर्वेदभाष्य-विवरण**—ऋषि दयानन्दकृत भाष्य पर पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासुकृत विवरण। (प्रथम भाग अप्राप्य है) द्वितीय भाग मूल्य २०-००

३. **अथर्ववेदभाष्य**—श्री पं० विश्वनाथ जी वेदोपाध्यायकृत। बीसवां काण्ड—अजिल्द १२-००, सजिल्द १५-००। १८-१९वां काण्ड सजिल्द १६-००।

४. **यजुर्वेद-स्वाध्याय तथा पशुयज्ञसमीक्षा**—पं० विश्वनाथ जी वेदोपाध्यायकृत अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ। मूल्य—सादा जिल्द १२-५०, बढ़िया जिल्द १५-००।

५. **माध्यन्दिन (यजुर्वेद) पदपाठ**—शुद्ध संस्करण। मूल्य २०-००

६. **वैदिक-सिद्धान्त-मीमांसा**—युधिष्ठिर मीमांसक द्वारा लिखित वेद-विषयक १७ विशिष्ट निबन्धों का संग्रह। मूल्य ३०-००।

७. **ऋग्वेदानुक्रमणी**—वेङ्कटमाधवकृत। इस ग्रन्थ में स्वर ऋषि देवता छन्द मन्त्रावृत्ति आदि महत्त्वपूर्ण ८ विषयों पर गम्भीर विचार किया है। व्याख्याकार—श्री पं० विजयपाल जी। मूल्य २०-००; राज सं० ३०-००।

८. **संस्कारविधि**—शताब्दी-संस्करण, ४६० पृष्ठ, सहस्राधिक टिप्पणियों, १२ परिशिष्टों वा सूचियों सहित। सं० युधिष्ठिर मीमांसक। मूल्य १०-००, राज-संस्करण १२-००। सस्ता संस्करण ४-७५, सजिल्द ६-००।

९. **अष्टाध्यायी (मूल) शुद्ध संस्करण।** मूल्य २-००

१०. **धातुपाठ**—धात्वादिसूचीसहित, सुन्दर शुद्ध संस्करण। मूल्य २-००

११. **अष्टाध्यायी-भाष्य**—श्री पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासुकृत। संस्कृत-हिन्दी में सरल सुबोध भाष्य। प्रथम भाग २४-००, द्वितीय भाग १६-००, तृतीय भाग २०-००।

१२. **संस्कृत पठन-पाठन की अनुभूत सरलतम विधि**—लेखक—श्री पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु। प्रथम भाग ७-००, द्वितीय भाग ८-००

१३. **महाभाष्य**—हिन्दी व्याख्या। लेखक—युधिष्ठिर मीमांसक। प्रथम भाग छप रहा है। द्वितीय भाग ३५-००, तृतीय भाग २५-००।

१४. उणादिकोष—ऋ० द० व्याख्या । ३०० पृष्ठ, सैंकड़ों टिप्पणियां तथा १२ परिशिष्टों वा विविध सूचियों के सहित । सम्पादक श्री पं०युधिष्ठिर जी मीमांसक । अजिल्द ७-००, सजिल्द १०-०० ।

१५. ध्यानयोग-प्रकाश--ऋषि दयानन्द के शिष्य स्वामी लक्ष्मणानन्द कृत । मूल्य ८-००, सजिल्द ९-०० ।

१६. अनासक्तियोग—पं० जगन्नाथ पथिक १२-००

१७. आर्याभिविनय (हिन्दी)—स्वामी दयानन्द । दोरङ्गी अप्राप्य

१८. **Aryabhivinaya—English Translation and notes** (स्वामी भूमानन्द) दोरङ्गी छपाई, अजिल्द ३-००, सजिल्द ४-०० ।

१९. विष्णुसहस्रनाम-स्तोत्रम् (सत्यभाष्य-सहितम्) पं० सत्यदेव वासिष्ठ कृत आध्यात्मिक वैदिक भाष्य (४ भाग) । मूल्य ५०-००

२०. श्रीमद् भगवद्-गीता-भाष्यम्—श्री पं० तुलसीराम स्वामी कृत । ५-००

२१. संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास—युधिष्ठिर मीमांसक कृत। नया संस्करण (सन् १९७३) तीन भाग । पूरा सेट ६०-००

२२. मीमांसा-शाबर-भाष्य—युधिष्ठिर मीमांसक लिखित आर्षमत-विमर्शिनी हिन्दी-व्याख्या सहित । प्रथम भाग ३०-००; द्वितीय भाग २४-०० । तृतीय भाग छप रहा है ।

२३. परमाणु-दर्शन—(संस्कृत) जगदीशाचार्य अजिल्द ५-००

२४. सत्यार्थप्रकाश—ऋषि दयानन्द सरस्वती कृत । १२७५ पृष्ठ, ३२०० टिप्पणियों, १३ परिशिष्टों वा विविध सूचियों तथा प्रथम संस्करण सन् १८५७ के विशिष्ट उपयोगी अंशों सहित । सम्पा० युधिष्ठिर मीमांसक । मूल्य लागतमात्र—२४-००, राजसंस्करण ३०-०० ।

२५. दयानन्दीय लघुग्रन्थ-संग्रह—१४ लघुग्रन्थों का संग्रह । विविध टिप्पणियों, और अनेक परिशिष्टों के सहित । मूल्य २०-००

२६. अष्टोत्तरशतनाममालिका—सत्यार्थप्रकाश के प्रथम समुल्लास की सुन्दर प्रामाणिक विस्तृत व्याख्या । पं० विद्यासागर शास्त्री। मूल्य ५-००

२७. आर्य-मन्तव्य-प्रकाश—पं० आर्यमुनि । दोनों भाग मूल्य ९-००

प्राप्ति-स्थान

रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़, जिला-सोनीपत (हरयाणा)
पिन० १३१०२१